तैत्तिरीयोपनिषदि
विशिष्टाद्वैतपरकम्
श्रीराघवकृपाभाष्यम्
(संस्कृत-हिन्दी भाष्य सहितम्)
भाष्यकाराः – जगद्गुरुरामानन्दाचार्याः
स्वामिरामभद्राचार्यमहाराजाः चित्रकूटीयाः

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।
।। श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।।

तैत्तिरीयोपनिषदि
(विशिष्टाद्वैतपरकम्)

श्रीराघवकृपाभाष्यम्
(संस्कृत-हिन्दी भाष्य सहितम्)

भाष्यकाराः-
जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याः
स्वामिरामभद्राचार्यजीमहाराजाः
चित्रकूटीयाः

प्रकाशक :
श्रीतुलसीपीठसेवान्यासः
तुलसीपीठः, आमोदवनम्
श्रीचित्रकूटधाम, जनपदं-सतना (म० प्र०)

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

प्रकाशकीयम्

नीलनीरदसंकाशकान्तये श्रितशान्तये ।
रामाय पूर्णकामाय जानकीजानये नमः ।।

साम्प्रतिकबुद्धिजीविवर्गे पण्डितसमाजे च श्रीवैष्णवसत्समाजे को नाम नाभिनन्दति ? पदवाक्यप्रमाणपारावारीणकवितार्किकचूडामणिसारस्वत-सार्वभौमपण्डितप्रकाण्डपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीवैष्णवकुलतिलकत्रिदण्डीश्वर-श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यवाचस्पतिमहामहनीयस्वामिरामभद्राचार्य-महाराजराजिष्णुप्रतिभाधनम् । आचार्यचरणैः श्रीसम्प्रदायश्रीरामानन्दीय-श्रीवैष्णवानुमोदितविशिष्टाद्वैतवादाम्नायमनुसृत्य ईशावास्यादि बृहदारण्यकान्तानामेका-दशोपनिषदां श्रीराघवकृपाभाष्यं प्रणीय भारतीयसंस्कृतवाङ्मयसनातनधर्मावलम्बिनां कियान् महान् उपकारो व्यधायीति तु निर्णेष्यतीतिहासः सोल्लासः । अस्य ग्रन्थरत्नस्य प्रकाशनदायित्वं श्रीतुलसीपीठसेवान्यासाय प्रदाय ऋणिनः कृता वयं श्रीमज्जगद्गुरुभिः वयं तेषां सततमाघमर्ण्यभाजः । अहं धन्यवादं दित्सामि साधुवादं च, वाराणसीस्थाय राघव ऑफसेट मुद्रणालयाध्यक्षाय चन्दनेशाय श्रीविपिनशंकरपाण्ड्यामहाभागाय, येन महता परिश्रमेण निष्ठया च गुरुगौरवेण जनताजनार्दनकरकमलं समुपस्थापितं ग्रन्थरत्नमेतत् । अहमाभारं बिभर्मि सकल-शास्त्रनिष्णातानां पण्डितप्रवराणां मुद्रणदोषनिराकरणचञ्चुनां जगद्गुरुवात्सल्यभाजनानां परमकुशलकर्मणां पं० प्रवर श्रीशिवरामशर्मणाम् पं० कृपासिन्धुशर्मणाम् च ।

अन्ततः साग्रहं निवेदयामि सर्वान् विद्वत्प्रवरान्, यत्—

ग्रन्थरत्नमिदं मत्वा सीताभर्तुरनुग्रहम् ।
निराग्रहाः समर्चन्तु रामभद्रार्यभारतीम् ।।

इति निवेदयते
राघवीया
कु० गीता देवी
प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठसेवान्यासस्य

द्वित्राः शब्दाः

श्रीराघवाष्टकम्

निशल्या कौसल्या सुखसुरलतातान्तिहृतये ।
यशोवारां राशेरुदयमभिकाङ्क्षन्निव शशी ।
समञ्चन् भूभागं प्रथयितुमरागं पदरतिम् ।
तमालश्यामो मे मनसि शिशुरामो विजयते ।।१।।

क्वचित् क्रीडन् व्रीडाविनतविहगैर्वृन्दविरुदो ।
विराजन् राजीवैरिव परिवृतस्तिग्मकिरणः ।
रजोवृन्दं वृन्दाविमलदलमालामलमलम् ।
स्वलङ्कुर्वन् बालः स इह रघुचन्द्रो विजयते ।।२।।

क्वचिन् माद्यन् माद्यन् मधुनवमिलिन्दार्यचरणा- ।
म्बुजद्वन्द्वो द्वन्द्वापनयविधिवैदग्ध्यविदितः ।
समाकुञ्चत् केशैरिव शिशुघनैः संवृतमिव ।
विधुं वक्त्रं बिभ्रन् नरपतितनूजो विजयते ।।३।।

क्वचित् खेलन् खेलन् मृदुमरुदमन्दाञ्चलचल- ।
च्छिरः पुष्पैः पुञ्जैर्विबुधललनानामभिचितः ।
चिदान्दो नन्दन् नवनलिननेत्रो मृदुहसन् ।
लसन् धूलीपुञ्जैर्जगति शिशुरेको विजयते ।।४।।

क्वचिन् मातुः क्रोडे चिकुरनिकरैरंजितमुखः ।
सुखासीनो मीनोपमदृशिलसत्कज्जलकलः ।
कलातीतो मन्दस्मितविजितराकापतिरुचिः ।
पिबन् स्तन्यं रामो जगति शिशुहंसो विजयते ।।५।।

क्वचिद् बालो लालालसितललिताम्भोजवदनो ।
वहन् वासः पीतं विशदनवनीतौदनकणान् ।

विलुण्ठन् भूभागे रजसि विरजा सम्भृत इव।
तृषा ताम्यत्कामो भवभयविरामो विजयते।।६।।

क्वचिद् राज्ञो हर्षं प्रगुणयितुकामः कलगिरा।
निसिञ्चन् पीयूषं श्रवणपुटके सम्मतसताम्।
विरिंगन् पणिभ्यां वनरुहपदाभ्यां कलदृशा।
निरत्यन् नैरारश्यं नवशशिकरास्यो विजयते।।७।।

क्वचिन् नृत्यन् छायाच्छुपितभवभीतिर्भवभवो।
दधानोऽलंकारं विगलितविकारं शिशुवरः।
पुरारातेः पूज्यः पुरुषतिलकः कन्दकमनः।
अयोध्यासौभाग्यं गुणितमिहरामो विजयते।।८।।

जयत्यसौ नीलघनावदातो।
विभा विभातो जनपारिजातः।
शोभा समुद्रो नरलोकचन्द्रः।
श्रीरामचन्द्रो रघुचारुचन्द्रः।।९।।

ईशावास्यसमारब्धाः बृहदारण्यकान्तिमाः।
ऐकादशोपनिषदो विशदाः श्रुतिसम्मताः।।१०।।

श्रीराघवकृपाभाष्यनाम्ना भक्तिसुगन्धिना।
पुण्यपुष्पोत्करेणेड्याः मया भक्त्या प्रपूजिताः।।११।।

क्वचित्क्वचित् पदच्छेदः क्वचिदन्वययोजना।
क्वचिच्छास्त्रार्थपद्धत्या पदार्थाः विशदीकृताः।।१२।।

खण्डनं परपक्षाणां विशिष्टाद्वैतमण्डनम्।
चन्दनं वैष्णवसतां श्रीरामानन्दनन्दनम्।।१३।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं भूषितं सुरभाषया।
भाषितं भव्यया भक्त्या वेदतात्पर्यभूषया।।१४।।

प्रमाणानि पुराणानां स्मृतीनामागमस्य च ।
तथा श्रीमानसस्यापि दर्शितानि स्वपुष्टये ।।१५।।

प्रत्यक्षमनुमानं च शाब्दञ्चेति यथास्थलम् ।
प्रमाणत्रितायं ह्यत्र तत्वत्रयविनिर्णयम् ।।१६।।

विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तदर्पणं श्रुतितर्पणम् ।
अर्पणं रामभद्रस्य रामभद्रसमर्पणम् ।।१७।।

यदि स्युः त्रुटयः काश्चित्ताः ममैवाल्पमेधसः ।
यदत्र किञ्चिद्वैशिष्ट्यं तच्छ्रीरामकृपाफलम् ।।१८।।

रुद्रसंख्योपनिषदां मया भक्त्या प्रभाषितम् ।
श्रीराघवकृपाभाष्यं शीलयन्तु विमत्सराः ।।१९।।

इति मंगलमाशास्ते
श्रीवैष्णवविद्वत्प्रीतिवशंवदो राघवीयो जगद्गुरु रामानन्दाचार्यो स्वमिरामभद्राचार्यः
अधिचित्रकूटम् ।

●

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

उपोद्‌घात

स्तौमि तामरसश्यामं, रामं राजीवलोचनम् ।
यत्पदाम्भोजपोतेन, न भवाब्धिं सुखं तरेत् ।।

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा में पढ़ी जाने के कारण इसे तैत्तिरीय उपनिषद् कहते हैं। इसके प्रथम अध्याय में वैदिक शिक्षा के श्रौत सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। पुनः ब्रह्म के स्वरूप लक्षण, तटस्थ लक्षण का भी बहुत मनोवैज्ञानिक वर्णन है। भृगुवल्ली में परमेश्वर के तटस्थ लक्षण का संघटन किया गया है तथा ब्रह्मानन्दवल्ली में प्रभु के आनन्द स्वरूप का निर्वचन है। तैत्तिरीय उपनिषद् पर हिन्दी तथा संस्कृत में मेरे द्वारा लिखा हुआ श्रीराघवकृपाभाष्य निश्चित ही ब्रह्म जिज्ञासुओं के लिए परमार्थ पथ का उपयुक्त पाथेय सिद्ध हो सकेगा।

।। इति मंगलमाशास्ते जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य चित्रकूट ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

वाचस्पति, श्री तुलसी पीठाधीश्वर
जगद्गुरू रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
तुलसीपीठ, आमोदवन, चित्रकूट, जि. सतना (म.प्र.)

पदवाक्यप्रमाणपारावारीण, विद्यावारिधि, वाचस्पति परमहंस परिव्राजिकाचार्य, आशुकवि यतिवर्य प्रसथानत्रयी भाष्यकार धर्मचक्रवर्ती अनन्तश्री समलंकृत

श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

पूज्यपाद

श्री श्री स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज

का

संक्षिप्त जीवन वृत्त

आविर्भाव

आपका अविर्भाव १४ जनवरी १९५० तदनुसार मकर संक्राति की परम पावन सान्ध्य बेला में वसिष्ठ गोत्रीय उच्च धार्मिक सरयूपारीण ब्राह्मण मिश्र वंश में उत्तर-प्रदेश के जौनपुर जनपद के पवित्र ग्राम शाडीखुर्द की पावन धरती पर हुआ। सर्वत्र आत्मदर्शन करने वाले हरिभक्त, या मानवता की सेवा करने वाले दानवीर, या अपनी मातृभूमि की रक्षा में प्राण बलिदान करने वाले शूर-वीर योद्धा, देशभक्त, को जन्म का सौभाग्य तो प्रभुकृपा से किसी भी माँ को मिल जाता है। परन्तु भक्त, दाता और निर्भीक तीनों गुणों की संपदा से युक्त बालक को जन्म देने का परम श्रेय अति विशिष्ठ भगवत् कृपा से किसी विरली माँ को ही प्राप्त होता है। अति सुन्दर एवं दिव्य बालस्वरूप आचार्य-चरण को जन्म देने का परम सौभाग्य धर्मशीला माता श्रीमती शची देवी और पिताश्री का गौरव पं० श्रीराजदेव मिश्रजी को प्राप्त हुआ।

आपने शैशव अवस्था में ही अपने रूप, लावण्य एवं मार्धुय से सभी परिवार एवं परिजनों को मोहित कर दिया। आप की बाल क्रीड़ाएँ अद्भुत थी। आपके श्वेतकमल समान सुन्दर मुख मण्डल पर बिखरी मधुर मुस्कान, हर देखने वाले को सौम्यता का प्रसाद बाँटती थी। आपका विस्तृत एवं तेजस्वी ललाट, आपके अपार शस्त्रीय ज्ञानी तथा त्रिकालदर्शी होने का पूर्व संकेत देता था। आपका प्रथम दर्शन मन को शीतलता प्रदान करता था। आपके कमल समान नयन उन्मुक्त हास्यपूर्ण मधुर चितवन चंचल बाल क्रीड़ाओं की चर्चा शीघ्र ही किसी महापुरुष के प्राकट्य की शुभ सूचना की भान्ति दूर-दूर तक फैल गई, और यह धारणा बन गई कि

यह बालक असाधारण है। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' की कहावत को आपने चरितार्थ किया।

भगवत् इच्छा

अपने प्रिय भक्त को सांसारिक प्रपञ्चों से दूर रखने के लिए विधाता ने आचार्य वर के लिए कोई और ही रचना कर रखी थी। जन्म के दो महीने बाद ही नवजात शिशु की कोमल आँखों को रोहुआ रोग रूपी राहू ने तिरोहित कर दिया। आचार्य प्रवर के चर्मनेत्र बन्द हो गए। यह हृदय विदारक दुर्घटना प्रियजनों को अभिशाप लगी, परन्तु नवजात बालक के लिए यह वरदान सिद्ध हुई। अब तो इस नन्हे शिशु के मन-दर्पण पर परमात्मा के अतिरिक्त जगत् के किसी भी अन्य प्रपञ्च के प्रतिबिम्बित होने का कोई अवसर ही नहीं था। आपको दिव्य प्रज्ञा-चक्षु प्राप्त हो गए। आचार्य प्रवर ने भगवत् प्रदत्त अपनी इस अन्तर्मुखता का भरपूर उचित उपयोग किया। अब तो दिन-रात परमात्मा ही आपके चिन्तन, मनन और ध्यान का विषय बन गए।

आरम्भिक शिक्षा

अन्तर्मुखता के परिणामस्वरूप आपमें दिव्य मेधाशक्ति और अद्भुत स्मृति का उदय हुआ, जिसके फलस्वरूप कठिन से कठिन श्लोक, कवित्त, छन्द, सवैया आदि आपको एक बार सुनकर सहज कण्ठस्थ हो जाते थे। मात्र पांच वर्ष की आयु में आचार्यश्री ने सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता तथा मात्र आठ वर्ष की शैशव अवस्था में पूज्य पितामह श्रीयुत् सूर्यबली मिश्र जी के प्रयासों से गोस्वामी तुलसीदास जी रचित सम्पूर्ण रामचरितमानस क्रमबद्ध पंक्ति, संख्या सहित कण्ठस्थ कर ली थी। आपके पूज्य पितामह आपको खेत की मेड़ पर बिठाकर आपको एक-एक बार में श्रीमानस के पचास पचास दोहों की आवृत्ति करा देते थे। हे महामनीषी, आप उन सम्पूर्ण पचास दोहों को उसी प्रकार पंक्ति क्रम संख्या सहित कण्ठस्थ कर लेते थे। अब आप अधिकृत रूप से श्रीरामचरितमानससरोवर के राजहंस बन कर श्रीसीता-राम के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम और ध्यान में तन्मय हो गए।

उपनयन एवं दीक्षा

आपका पूर्वाश्रम का नाम 'गिरिधर-मिश्र' था। इसलिए गिरिधर जैसा साहस, भावुकता, क्रान्तिकारी स्वभाव, रसिकता एवं भविष्य निश्चय की

दृढ़ता तथा निःसर्ग सिद्ध काव्य प्रतिभा इनके स्वभाविक गुण बन गये। बचपन में ही बालक गिरिधर लाल ने छोटी-छोटी कविताएँ करनी **प्रारम्भ** कर दी थीं। २४ जून १९६१ को निर्जला एकादशी के दिन 'अष्टवर्ष ब्राह्मणमुपनयीत' इस श्रुति-वचन के अनुसार आचार्यश्री का वैदिक परम्परापूर्वक उपनयन संस्कार सम्पन्न किया गया तथा उसी दिन गायत्री दीक्षा के साथ ही तत्कालीन मूर्धन्य विद्वान् सकलशास्त्र-मर्मज्ञ पं० श्रीईश्वरदास जी महाराज जो अवध-जानकीघाट के प्रवर्तक श्री श्री १०८ श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज के परम कृपापात्र थे, इन्हें राम मन्त्र की दीक्षा भी दे दी।

उच्च अध्ययन

आपमें श्रीरामचरितमानस एवं गीताजी के कण्ठस्थीकरण के पश्चात् संस्कृत में उच्च अध्ययन की तीव्र लालसा जागृत हुई और स्थानीय आदर्श श्री गौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय में पाँच वर्ष पर्यन्त पाणिनीय व्याकरण की शिक्षा सम्पन्न करके आप विशेष अध्ययन हेतु वाराणसी आ गये। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की १९७३ शास्त्री परीक्षा में विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर एक स्वर्ण पदक प्राप्त किया एवं १९७६ की आचार्य की परीक्षा में समस्त विश्वविद्यालय में छात्रों में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर पाँच स्वर्ण पदक तथा एक रजत पदक प्राप्त किया। वाक्पटुता एवं शास्त्रीय प्रतिभा के धनी होने के कारण आचार्यश्री ने अखिल भारतीय संस्कृत अधिवेशन में सांख्य, न्याय, व्याकरण, श्लोकान्त्याक्षरी तथा समस्यापूर्ति में पाँच पुरस्कार प्राप्त किये, एवं उत्तर प्रदेश को १९७४ की 'चलवैजयन्ती' प्रथम पुरस्कार दिलवाया। १९७५ में अखिल भारतीय संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त कर तत्कालीन राज्यपाल डॉ० एम० चेन्ना रेड्डी से कुलाधिपति 'स्वर्ण पदक' प्राप्त किया। **इसी प्रकार आचार्यचरणों ने शास्त्रार्थों एवं भिन्न-भिन्न शैक्षणिक प्रतियोगिताओं में अनेक शील्ड, कप एवं महत्वपूर्ण शैक्षणिक पुरस्कार प्राप्त किये।** १९७६ वाराणसी साधुबेला संस्कृत महाविद्यालय में समायोजित शास्त्रार्थ आचार्यचरण प्रतिभा का एक रोमांचक परीक्षण सिद्ध हुआ। इसमें आचार्य अन्तिम वर्ष के छात्र, प्रत्युत्पन्न मूर्ति, शास्त्रार्थ-कुशल, श्री गिरिधर मिश्र ने 'अधातु परिष्कार' पर पचास विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं शास्त्रीय युक्तियों से अभिभूत करके निरुत्तर करते हुए सिंहगर्जनपूर्वक तत्कालीन विद्वान् मूर्धन्यों को परास्त किया था। पूज्य आचार्यश्री ने सं०वि०वि० के व्याकरण विभागाध्यक्ष

पं० श्री रामप्रसाद त्रिपाठी जी से भाष्यान्त व्याकरण की गहनतम शिक्षा प्राप्त की एवं उन्हीं की सन्निद्धि में बैठकर न्याय, वेदान्त, सांख्य आदि शास्त्रों में भी प्रतिभा ज्ञान प्राप्त कर लिया एवं 'अध्यात्मरामायणे अपणिनीयप्रयोगाणां विमर्श:' विषय पर अनुसन्धान करके १९८१ में विद्यावारीधि (Ph.D) की उपाधि प्राप्त की। **अनन्तर "अष्टाध्याय्या: प्रतिसूत्रं शाब्दबोध समीक्षा" इस विषय पर दो हजार पृष्ठों का दिव्य शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करके आचार्य चरणों ने शैक्षणिक जगत् की सर्वोत्कृष्ट अलंकरण उपाधि वाचस्पति" (Dlit) प्राप्त की।**

विरक्त दीक्षा

मानस की माधुरी एवं भागवतादि सद्ग्रन्थों के अनुशीलन ने आचार्य-चरण को पूर्व से ही श्री सीतारामचरणानुरागी बना ही दिया था। अब १९ नवम्बर १९८३ की कार्तिक पूर्णिमा के परम-पावन दिवस को श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में विरक्त दीक्षा लेकर आचार्यश्री ने एक और स्वर्ण सौरभ-योग उपस्थित कर दिया। पूर्वाश्रम के डॉ० गिरिधर मिश्र अब श्रीरामभद्रदास नाम से समलंकृत हो गये।

जगद्गुरु उपाधि

आपने १९८७ में श्रीचित्रकूट धाम में श्रीतुलसीपीठ की स्थापना की। उसी समय वहाँ के सभी सन्त-महान्तों के द्वारा आपको श्रीतुलसीपीठाधीश्वर पद पर प्रतिष्ठित किया और ज्येष्ठ शुक्ल गंगा दशहरा के परम-पावन दिन वि० सम्वत् २०४५ तद्नुसार २४ जून १९८८ को वाराणसी में आचार्यश्री का काशी विद्वत् परिषद् एवं अन्य सन्तमहान्त विद्वानों द्वारा चित्रकूट श्रीतुलसीपीठ के जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पर पर विधिवत अभिषेक किया गया एवं ३ फरवरी १९८९ को प्रयाग महाकुम्भ पर्व पर समागत सभी श्री रामानन्द सम्प्रदाय के तीनों अखाड़ों के श्रीमहन्तों चतु:सम्प्रदाय एवं सभी खालसों तथा सन्तों द्वारा चित्रकूट सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्य महाराज को सर्वसम्मति से समर्थनपूर्वक अभिनन्दित किया।

विलक्षणता

आपके व्यक्तित्व में अद्भुत विलक्षणता है। जिनमें कुछ उल्लेखनीय हैं कोई भी विषय आपको एक ही बार सुनकर कण्ठस्थ हो जाता है और वह कभी विस्मृत नहीं होता। इसी विशेषता के परिणामस्वरूप जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

जी ने समस्त तुलसी साहित्य अर्थात् तुलसीदास जी के बारहों ग्रन्थ, सम्पूर्ण रामचरितमानस, द्वादश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, नारद-भक्तिसूत्र, भागवद्गीता,शाण्डिल्य सूत्र, बाल्मीकीयरामायण व समस्त आर्य ग्रन्थों के सभी उपयोगी प्रमुख अंश हस्तामलकवत् कण्ठस्थ कर लिये। आचार्यश्री हिन्दी एवं संस्कृत के आशुकवि होने के कारण समर्थ रचनाएँ भी करते हैं। वसिष्ठ गोत्र में जन्म लेने के कारण आचार्यवर्य श्रीराघवेन्द्र की वात्सल्य भाव से उपासना करते हैं। आज भी उनकी सेवा में शिशु रूप में श्री राघव अपने समस्त परिकर खिलौने के साथ विराजमान रहते हैं। आचार्यवर्य की मौलिक विशेषता यह है कि इतने बड़े पद को अलंकृत करते हुए भी आपका स्वभाव निरन्तर निरहंकार, सरल तथा मधुर है। विनय, करुणा, श्रीराम-प्रेम, सच्चरित्रता आदि अलौकिक गुण उनके सन्तत्त्व को ख्यापित करते हैं। कोई भी व्यक्ति एकबार ही उनके पास आकर उनका अपना बन जाता है। हे भारतीय संस्कृति के रक्षक! **आप अपनी विलक्षणकथा शैली से श्रोताओं को विभोर कर देते हैं।** माँ सरस्वती की आप पर असीम कृपा है। आप वेद-वेदान्त, उपनिषद्, दर्शन, काव्यशास्त्र व अन्य सभी धार्मिक ग्रन्थों पर जितना अधिकारपूर्ण प्रवचन करते हैं उतना ही दिव्य प्रवचन भगवान् श्रीकृष्ण की वाङ्मय मूर्ति महापुराण **श्रीमद्भागवत पर भी करते हैं।** आप सरलता एवं त्याग की दिव्य मूर्ति हैं। राष्ट्र के प्रति आपकी सत्यनिष्ठ स्पष्टवादिता एवं विचारों में निर्भीकता जन-जन के लिए प्रेरणादायक है। आपके दिव्य प्रवचनों में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की त्रिवेणी तो प्रवाहित होती है, साथ ही राष्ट्र का सागर भी उमड़ता है। जिसे आप अपनी सहज परन्तु सशक्त अभिव्यक्ति की गागर में भर कर अपने श्रद्धालु श्रोताओं को अवगाहन कराते रहते हैं।

आपका सामीप्य प्राप्त हो जाने के बाद जीव कृत्य-कृत्य हो जाता है। धन्य हैं वे माता-पिता जिन्होंने ऐसे 'पुत्ररत्न' को जन्म दिया। धन्य हैं वे सद्गुरु जिन्होंने ऐसा भागवत् रत्नाकर समाज की दिया। हे श्रेष्ठ सन्त शिरोमणि! हम सब भक्तगण आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर गौरवान्वित हैं।

साहित्य सृजन

आपने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से हिन्दी एवं संस्कृत के अनेक आयामों को महत्त्वपूर्ण साहित्यिक उपादान भेंट किये। काव्य, लेख, निबन्ध, प्रवचन संग्रह एवं दर्शन क्षेत्रों में आचार्यश्री की मौलिक रचनाएँ महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

इस प्रकार आचार्यश्री अपने व्यक्तित्व, कृतित्व से श्रीराम-प्रेम एवं सनातन धर्म के चतुर्दिक प्रचार व प्रसार के द्वारा सहस्त्राधिक दिग्भ्रान्त नर-नारियों को सनातन धर्मपीयूष से जीवनदान करते हुए अपनी यश:सुरभि से भारतीय इतिहास वाटिका को सौरभान्वित कर रहे हैं। तब कहना पड़ता है कि—

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने।।

❀ ❀ ❀

संत सरल चित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरन रति देहु।।

धर्माचार्य परम्परा :—

भाष्यकार !

प्राचीन काल में धर्माचार्यों की यह परम्परा रही है कि वही व्यक्ति किसी भी सम्प्रदाय के आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया जाता था, जो उपनिषद्, गीता तथा ब्रह्मसूत्र पर अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तानुसार वैदुष्यपूर्ण वैदिक भाष्य प्रस्तुत करता था। जिसे हम 'प्रस्थानत्रयी' भाष्य कहते हैं, जैसे शंकराचार्य आदि। आचार्यप्रवर ने इसी परम्परा का पालन करते हुए सर्वप्रथम नारदभक्तिसूत्र पर ''श्रीराघवकृपाभाष्यम्'' नामक भाष्य ग्रन्थ की रचना की। उसका लोकार्पण १७ मार्च १९९२ को तत्कालीन उप राष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा द्वारा सम्पन्न हुआ।

पूज्य आचार्यचरण के द्वारा रचित 'अरुन्धती महाकाव्य' का समर्पण समारोह दिनांक ७ जुलाई ९४ को भारत के राष्ट्रपति महामहिम डॉ० शंकरदयाल शर्मा जी के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

इसी प्रकार आचार्यचरणों ने एकादश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता पर रामानन्दीय श्रीवैष्णव सिद्धान्तानुसार भाष्य लेखन सम्पन्न करके विशिष्टाद्वैत अपनी श्रुतिसम्मत जगद्गुरुत्व को प्रमाणित करके इस शताब्दी का कीर्तिमान स्थापित किया है।

आप विदेशों में भी भारतीय संस्कृति का विश्वविश्रुत ध्वज फहराते हुए सजगता एवं जागरूकता से भारतीयधर्माचार्यों का कुशल प्रतिनिधित्व करते हैं।

आचार्यश्री के प्रकाशित ग्रन्थ

१. मुकुन्दस्मरणम् (संस्कृत स्तोत्र काव्य) भाग–१–२
२. भरत महिमा
३. मानस में तापस प्रसंग
४. परम बड़भागी जटायु
५. काका बिदुर (हिन्दी खण्ड काव्य)
६. माँ शबरी (हिन्दी खण्ड काव्य)
७. जानकी-कृपा कटाक्ष (संस्कृत स्तोत्र काव्य)
८. सुग्रीव की कुचाल और विभीषण की करतूत
९. अरुन्धती (हिन्दी महाकाव्य)
१०. राघव गीत-गुञ्जन (गीत काव्य)
११. भक्ति-गीता सुधा (गीत काव्य)
१२. श्री गीता तात्पर्य (दर्शन ग्रन्थ)
१३. तुलसी साहित्य में कृष्ण-कथा (समीक्षात्मक ग्रन्थ)
१४. सनातन धर्म विग्रह-स्वरूपा गौ माता
१५. मानस में सुमित्रा
१६. भक्ति गीत सुधा (गीत काव्य)
१७. श्रीनारदभक्तिसूत्रेषु राघवकृपाभाष्यम् (हिन्दी अनुवाद सहित)
१८. श्री हनुमान चालीसा (महावीरी व्याख्या)
१९. गंगामहिम्नस्तोत्रम् (संस्कृत)
२०. आजादचन्द्रशेखरचरितम् (खण्डकाव्य) संस्कृत
२१. प्रभु करि कृपा पाँवरि दीन्ही
२२. राघवाभ्युदयम् (संस्कृत नाटक)

आचार्यश्री के शीघ्र प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

१. हनुमत्कौतुक (हिन्दी खण्ड काव्य)
२. संस्कृत शतकावली (क) आर्याशतकम् (ख) सीताशतकम्
(ग) राघवेन्द्रशतकम् (घ) मन्मथारिशतकम् (ङ) चण्डिशतकम्
(च) गणपतिशतकम् (छ) चित्रकूटशतकम् (ज) राघवचरणचिह्नशतकम्
३. गंगामहिम्नस्तोत्रम् (संस्कृत)
४. संस्कृत गीत कुसुमाञ्जलि
५. संस्कृत प्रार्थनाञ्जलि
६. कवित्त भाण्डागारम् (हिन्दी)

●

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

आचार्यचरणानां बिरुदावली

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।
रामानन्दाचार्यं मन्दाकिनीविमलसलिलासिक्तम् ।
तुलसीपीठाधीश्वरदेवं जगद्गुरुं वन्दे ।।

श्रीमद् सीतारामपादपद्मपरागमकरन्दमधुव्रतश्रीसम्प्रदायप्रवर्तकसकलशास्त्रार्थ-महार्णवमन्दरमतिश्रीमदाद्यजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यचरणारविन्दचञ्चरीकः समस्त-वैष्णवालंकारभूताः आर्षवाङ्मयनिगमागमपुराणेतिहाससन्निहितगम्भीरतत्वान्वेषण-तत्पराः पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणाः सांख्ययोगन्यायवैशेषिकपूर्वमीमांसावेदान्तनारद-शाण्डिल्यभक्तिसूत्रगीतावाल्मीकीयरामायणः भागवतादिसिद्धान्तबोधपुरःसरसमधि-कृताशेषतुलसीदाससाहित्य-सौहित्यस्वाध्यायप्रवचनव्याख्यानपरमप्रवीणाः सनातनधर्म-संरक्षणधुरीणाः चतुराश्रमचातुर्वर्ण्यमर्यादासंरक्षणविचक्षणाः अनाद्यविच्छिन्नसद्गुरु-परम्पराप्राप्तश्रीमद्सीतारामभक्तिभागीरथीविगाहनविमलीकृतमानसाः श्रीमद्रामचरित-मानसराजमरालाः सततं शिशुरूपराघवलालनतत्पराः समस्तप्राच्यप्रतीच्यविद्या-विनोदितविपश्चितः राष्ट्रभाषागीर्वाणगिरामहाकवयः विद्वन्मूर्धन्याः श्रीमद्रामप्रेम-साधनधनधन्याः शास्त्रार्थरसिकशिरोमणयः विशिष्टाद्वैतवादानुवर्तिनः परमहंस-परिव्राजकाचार्यत्रिदण्डी वर्याः श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठाः प्रस्थानत्रयीभाष्यकाराः श्रीचित्रकूटस्थ-मन्दाकिनीविमलपुलिननिवासिनः श्रीतुलसीपीठाधीश्वराः श्रीमद्जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्याः अनन्तश्रीसमलंकृतश्रीश्रीरामभद्राचार्यमहाराजाः विजयतेतराम् ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

•

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

तैत्तिरीयोपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

पदवाक्यप्रमाणपारावारीण-कवितार्किकचूडामणि-वाचस्पति-
जगद्गुरुरामानन्दाचार्य-स्वामि-रामभद्राचार्य-प्रणीतं,
श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्यसम्प्रदायानुसारि-
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तप्रतिपादकश्रीराघवकृपाभाष्यम् ।।

।। श्रीमद्राघवो विजयते।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

अथ तैत्तिरीयोपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

प्रथमोऽनुवाकः

मङ्गाचरणम्

जनकजापते जह्नुकन्यका जनककार्मुकज्यारवव्रतिन् ।
जनकतापहन् जैत्रविक्रम जनकलिं हरे जारय द्रुतम् ।।१।।

अथ तैत्तिरीयोपनिषत् श्रीराघवकृपाभाष्य नाम्ना विवरणेन विभूष्यते । तत्र प्रथमं शिक्षाध्यायः, प्रथमोऽनुवाकः सशान्तिपाठः —

ॐ शं नो मित्रः शं वरूणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।१।।

शिक्ष्यते अभ्यस्यते शास्त्रं यया सा शिक्षा तत्सम्बन्धी अध्यायः शिक्षाध्यायः । तत्र प्रथमेऽनुवाके मित्रा वरुणार्यमेन्द्रबृहस्पतिविष्णूनां स्मरणम् । यथा षडमी षडङ्गवेदाध्ययनं निर्विघ्नं कुर्वन्तु । नः अस्मभ्यं मित्रः, वरुणः, अर्यमा पितृदेवता प्रमुखः, इन्द्रो देवराजः, बृहस्पतिर्देवगुरुः, उरुक्रमः उरुघाक्रमः पाद विक्षेपो यस्य स उरुक्रमः विष्णुः वामनावतारो भगवान् उपेन्द्रः, इमे सर्वे शं कल्याणरूपाः भवन्तु । भवतु इति प्रत्येकमन्वेति । ते तुभ्यं ब्राह्मणे नमः । हे वायो ! ते तुभ्यं नमस्काराः, यतो हि त्वं प्रत्यक्षं प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धं ब्रह्मासि । त्वां भवन्तमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म, त्वा च प्रत्यक्षविषयं वदिष्यामि, निजहृदये स्थिरीकरिष्यामि । ऋतं यथार्थं वदिष्यामि । सत्यं सद्भ्यो हितं वदिष्यामि, व्याहरिष्यामि । माम् अवतु रक्षतु, वक्तारम् उपनिषत् प्रवाचकम् अवतु रक्षतु । दृढीकरणार्थं द्विरुच्चारणम् । त्रिःशान्तिपाठः तापत्रयविनाशाय ।।श्रीः।।

।। इति शिक्षाध्याये प्रथमोऽनुवाकः ।।

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

अथ शिक्षा प्रतिपाद्यमाह —

शीक्षां व्याख्यास्यामः । वर्णः स्वरः । मात्रा बलम् । साम सन्तानः । इत्युक्तः शीक्षाध्यायः ॥

शीक्षां व्याख्यास्यामः इदं प्रतिज्ञावाक्यम् । तत्र शिक्षायां वर्णाः द्विपञ्चाशत्, स्वराः सप्त, मात्रा तिस्रः बलमुच्चारणसामर्थ्यम् इति शिक्षा संक्षेपः । शीक्षा इत्यत्र तु **अन्येषामपि दृश्यते** इति दीर्घः । वेदोच्चारणे वर्णस्वरमात्राबलानां प्रयोगः ॥श्रीः॥

॥इति द्वितीयोऽनुवाकः॥
॥ श्रीराघवोः शन्तनोतु ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः

अथ महासंहिताव्याख्यानात् पूर्वं मंगलमाचष्टे —

सह नौ यशः । सह नौ ब्रह्मवर्चसम् । अथातः सँहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः । पञ्चस्वधिकरणेषु । अधिलोकमधिज्योतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम् । ता महासँहिता इत्याचक्षते । अथाधिलोकम् । पृथिवी पूर्वरूपम् । द्यौरुत्तररूपम् । वायुः संधानम् । इत्यधिलोकम् ॥१॥

नौ गुरुशिष्ययोः यशः सह सहैव भवतु । पुनश्च नौ आवयोः ब्रह्मवर्चसं ब्रह्मतेजः सहैव भवतु । अतः एतस्मात् मंगलाशासनादनन्तरं संहितायाः सम्यक् हितं यस्यां तस्याः सन्धिप्रक्रियायाः उपनिषदं रहस्यविद्यां पञ्चसु अधिकरणेषु व्याख्यास्यामः प्रवक्ष्यामः । तत्र अधिलोकादयः पञ्चसंहिता, लोके इत्यधिलोकं विभक्त्यार्थेऽव्ययीभावः । लोकं कथं सन्धिः ? संहितायां त्रयः अवयवाः, पूर्वरूपम् उत्तररूपं द्वयोः संयोजकमुपकरणं तदेव सन्धिः कथ्यते । तत्र पृथिवीदिवोः संहितायां पूर्वरूपं पृथिवी, उत्तरं द्यौः स्वर्गः, द्वयोः संयोजकमाकाश एव सन्धिः । सन्धीयेते संयोज्येते पूर्वोत्तररूपे येन स सन्धिः । वायुः सन्धानं प्रेरकम् ॥श्रीः॥

अथ अधिज्यौतिषाधिविद्याधिप्रजाध्यात्मानां संहितात्वं वर्णयति —

अथाधिज्यौतिषम् । अग्निः पूर्वरूपम् । आदित्य उत्तररूपम् । आपः सन्धि। वैद्युतः सन्धानम् । इत्यधिज्यौतिषम् । अथाधिविद्यम् । आचार्यः पूर्वरूपम् । अन्तेवास्युत्तररूपम् । विद्या सन्धिः । प्रवचनँ् सन्धानम् । इत्यधिविद्यम् ।।२।।

अथाधिप्रजम् । माता पूर्वरूपम् । पितोत्तररूपम् । प्रजासन्धिः ।

प्रजननँ् सन्धानम् । इत्यधिप्रजम् ।।३।।

अथाध्यात्मम् । अधरा हनुः पूर्वरूपम् । उत्तरा हनुरुत्तररूपम् । वाक्सन्धिः । जिह्वा सन्धानम् । इत्यध्यात्मम् । इतीमा महासँ्हिता य एवमेता महासँ्हिता व्याख्यातां वेद । सन्धीयते प्रजया पशुभिः । ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन सुवर्गेण लोकेन

अग्निर्ज्ञेयं पूर्वरूपमुत्तरं रविरुच्यते ।
वायुः सन्धिश्च सन्धानं तडिदित्यधिज्यौतिषम् ।।

आचार्यः स्यात् पूर्वरूपमुत्तरं शिष्य उच्यते ।
विद्यासन्धिश्च सन्धानमधिविद्यं प्रवाचनम् ।।

माता ज्ञेयं पूर्वरूपं पितारूपं तथोत्तरम् ।
प्रजासन्धिः प्रजननं सन्धानमित्यधिप्रजम् ।।

अधरा हनुः पूर्वरूपमुत्तराहनुरुत्तरम् ।
जिह्वासन्धिश्च सन्धानं वागित्यध्यात्ममुच्यते ।।

संहिता पञ्चकं या वै वेत्ति ब्रह्मविचारवित् ।
सन्धीयेते उभौ लोकौ स्यनैवात्र संशयः ।।श्रीः।।

।।इति तृतीयोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ चतुर्थोऽनुवाकः ।।

अथ चतुर्थानुवाके ऋषिर्ब्रह्मयज्ञसमृद्धये परमेश्वरं प्रार्थयते —

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः । छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संबभूव । स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु । अमृतस्य देवधारणो भूयासम् । शरीरं मे विचर्षणम् । जिह्वा मे मधुमत्तमा । कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम् । ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः । श्रुतं मे गोपाय । आवहन्ती वितन्वाना ।।१।।

तत्र प्रथमं मेधाकामस्य मेधा प्राप्तये केचन जपार्थं मन्त्रविशेषाः । अत्र भगवद् वाचकस्य ओङ्कारस्य प्रथमं स्तवनम् । यः छन्दसामृषभः श्रेष्ठः छन्दोभ्यः प्रथमम् अधिअमृतात् अमृतरूपात् परमात्मनः ब्रह्ममुखं निमित्तीकृत्य संबभूव । यथा पौराणिकाः आमनन्ति —

ओङ्कारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्वा बहिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ।।

एवं यः विश्वरूपः सर्वरूपः, स इन्द्रःमन्त्रराजैश्वर्यपूर्णः मा मां मेधया आशुग्रहणशक्त्या स्पृणोतु प्रीणयतु । मा- इन्द्रो इति पदच्छेदः । हे देव ! अहं अमृतस्य ब्रह्मानन्दस्य धारणः धारयिता भूयासम् । मे मम शरीरं विचर्षणं विष्णुं चरति गच्छति इति विचर्षणम् । मे मम जिह्वा मधुमत्तमा अतिशयेन मधुमती मधुरभाषिणी । तथा च अहं कर्णाभ्यां भूरि अधिकं विश्रुवं विश्रुयासम् । अत्र व्यत्ययात् यासुडभावः, बङादेशश्च । हे ओङ्कार ! त्वं ब्रह्मज्ञानधारणशक्त्या पिहितः, ब्रह्मणः वेदात्मकस्य परमात्मनः, परमात्मकस्य वा वेदस्य कोशः भाण्डागारम् असि । अतः हे प्रणवरूप-पमात्मन् ! मे मम श्रुतं शास्त्रं वेदान्तश्रवणं च गोपाय रक्ष, इति जपमन्त्राः ।।श्रीः।।

अथ श्रीकामस्य होममन्त्रः निर्दिश्यते —

''कुर्वाणा चीरमात्मनः । वासाँसि मम गावश्च । अन्नपाने च सर्वदा । ततो मे श्रियमावह । लोमशां पशुभिः सह स्वाहा । आमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । विमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । प्रमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । दमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ।।२।।

कुर्वाणा, अचीरम् आत्मन इति पदच्छेदः । मेधा प्राप्त्यन्तरं श्रीरपेक्षते, पूर्व तत्स्वरूपं वर्णयति । अचीरम् अचिरम् **अन्येषामपि दृश्यते** इत्यनेनदीर्घ ! । अतिशीघ्रम् आत्मनः मम आराधकस्य वासांसि वस्त्राणि आवहन्ती आनयन्ती ''शतृप्रत्यान्तमेतत्, सर्वदा मम गावः 'व्यत्पयात् ' जसन्तं, गाः इत्यर्थः । धेनु वितन्वाना विस्तारयन्ती । तथा अन्नपाने भोजनजले कुर्वाणा उत्पादयन्ती । एवं भूता या श्रीः तां मे श्रियं लोमशां लोमयुक्तानां समूहैः मेषादिभिः पुशुभिः अश्वादिभिः सह आवह आनय । इति मन्त्रं जपन् स्वाहा उच्चार्य हवनं कुर्यात् । एवं मेधाश्री प्राप्त्यनन्तरं विद्यार्थ्यागमनं प्रार्थयते । हे भगवान् ! मा मां समस्ताभ्यो दिग्भ्यो ब्रह्मचारिणः आयान्तु । एवं मां वि विशिष्टाः विद्याव्यसनिनः ब्रह्मचारिणः आयान्तु । एवं प्रकृष्टाः ब्रह्मचारिणः मामायान्तु । ते दमायन्तु दमशीलाः भवन्तु, शमायन्तु शमशीलाश्च भवन्तु । इति होम प्रकारः ।।श्रीः।।

पुनश्च श्री प्राप्तिरिशिष्टां यशोधनादिप्राप्तिं प्रार्थयते—

यशो जनेऽसानि स्वाहा । श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा । तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा । स मा भग प्रविश स्वाहा । तस्मिन् सहस्रशाखे निभगाहं त्वयि मृजे स्वाहा । यथापः प्रवता यन्ति यथा मासा अहर्जरम् । एवं मा ब्रह्मचारिणो धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा । प्रतिवेशोऽसि प्र मा पाहि प्र मा पद्यस्व ।।३।।

अत्र यश:शब्द: यशस्विपर:, जनशब्दश्च लोकवाची । हे भगवान् । त्वत्कृपया अहं जने लोके यश: यशस्वि असानि भवानि । वसीयस: धनवत: श्रेयान् प्रशस्यतरो भवानि । अत्र वसीयस : इत्यस्य वस्यस: इति रूपम् । व्यत्ययात् ईकारस्य लोप: । हे भग । भगानि सन्त्यस्मिन् इति भग: तत्सद्धौ हे भग। हे पूजनीय । तं त्वा प्रविशानि, अत्र इच्छार्थे लोट् स च प्रार्थनारूप: । एवं भूत: परम पूजनीयस्त्वं मा मां प्रविश प्रविष्टो भव, यथा आवयोस्तादात्म्यं स्यात् । एवं भूते सहस्रशाखे अनेकशाखामये वैदिकवाङ्मयमूलभूते तत्र भवति अहं निमृजे निकृष्टानि पातकानि शोधयामि । हे धात: ! निखिलजगद्धारणकर्त: । यथा प्रवता निम्नपथा: आप: जलानि आयान्ति यथा च अहानि जरयतीति अहर्जर: दिवस समावेशकर्ता संवत्सर: **संवत्सरोऽहर्जरो शरद्वर्षमथापि वा** इति कोशात् । तम् अहर्जरं संवत्सरं, यथा मासा: चैत्रादय: आयान्ति, एवं सर्वत: सर्वदिग्भ्य: मां ब्रह्मचारिण: आयान्तु, आगच्छन्तु । हे प्रणवात्मक परमात्मन् ! त्वं प्रतिवेशोऽसि संसारयात्राविश्रामस्थानमसि । मां प्रभाहि प्रकाशय, मां प्रपद्यस्व सेवकत्वेन स्वीकुरु ।।श्री:।।

।। इति चतुर्थोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ पञ्चमोऽनुवाकः ।।

इदानीं गायत्र्या: व्याहृतय: विचार्यन्ते, तत्र चतुर्थी मह इति व्याहृति: सविशेषं व्याख्यायते—

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः । तासामु ह स्मैतां चतुर्थीं महाचमस्यः प्रवेदयते मह इति । तद्ब्रह्म । स आत्मा । अङ्गान्यन्या देवताः । भूरिति वा अयं लोकः । भुव इत्यन्तरिक्षम् । सुवरित्यसौ लोकः ।।१।।

महं इत्यादित्यः । आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते । भूरिति वा आग्निः । भुव इति वायुः । सुवरित्यादित्यः । महं इति चन्द्रमाः । चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योती̐षि महीयन्ते । भूरिति वा ऋचः । भुव इति सामानि सुवरिति यजू̐षि ।।२।।

महं इति ब्रह्म । ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते । भूरिति वै प्राणः । भुव इत्यपानः । सुवरिति व्यानः । महं इत्यन्नम् । अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते । ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा । चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः । ता यो वेद । स वेद ब्रह्म । सर्वेऽस्मै देवा बलिभावहन्ति ।।३।।

भूर्भुवः स्वः इति तिस्रो व्याहृतयः प्रसिद्धाः । तत्र चतुर्थीं महः इति व्याहृतिं माहाचमस्यः ऋषिः प्रवेदयते साक्षात् कुरुते । तिसृषु व्याहृतिषु लोकाः त्रयः अग्निवाय्ववादित्याः ज्योतींषि, एवं ऋग्यजुःसामानि प्राणापानव्याना इति चत्वारि त्रिकाणि यथाक्रमं विराजन्ते । एवं महोव्याहृतौ आदित्यः चन्द्रमा, ब्रह्म, अन्नम् इति चतुष्कं विराजते । एवं चतुश्चतुष्कमण्डिताः चतस्रो व्याहृतयो यो वेद जानति, स एव ब्रह्म वेद, इत्यनुवाकार्थः ।।श्रीः।।

।। इति पञ्चमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ षष्ठोऽनुवाकः ।।

अथ प्राचीनयोग्याचार्यो ब्रह्मोपासनां निर्दिशति—

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः । तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः । अमृतो हिरण्मयः । अन्तरेण तालुके । य एष स्तन इवावलम्बते । सेन्द्रयोनिः । यत्रासौ केशान्तो विवर्तते । व्यपोह्य शीर्षकपाले । भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठिति । भुव इति वायौ ।।१।।

सुवरित्यादित्ये । महं इति ब्रह्मणि । आप्नोति स्वाराज्यम् । आप्नोति मनसस्पतिम् । वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः । श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः । एतत्ततो भवति । आकाशशरीरं ब्रह्म । सत्यात्म प्राणारामं मन आनन्दम् । शान्ति समृद्धममृतम् । इति प्राचीनयोग्योपास्स्व ।।२।।

अन्तर्हृदये योऽवकाशात्मक आकाशः तस्मिन् अयं हिरण्मयः कनकसदृशपीताम्बरधारी ज्योतिर्मयो वा, तत्र तालुत्यक्त्वा यः लम्बंमानोऽस्थि विशेषः तमभिव्याप्य मनोमयः, मन इव सूक्ष्मः दशाङ्गुलपरिमाणः विराजते । स च चतुर्व्याहृतिदेवतासु अग्निवाय्वादित्यब्रह्मसु प्रतिष्ठितः । इमं यः जानाति सः स्वाराज्यं

स्वातन्त्र्यं प्राप्नोति । हे प्राचीनयोग्य । ब्रह्म कदापि निराकारं न भवति । इत्येव वर्णयितुं पञ्चभि: विशेषणै: यथाक्रमं परव्यूहविभवान्तर्याम्यर्चावतारं ब्रह्म विशिनष्टि । आकाशमिव नीलं, व्यापकं, निर्लेपं, सावकाशं, कृपाकादम्बिनीवर्षुकं शरीरं श्रीविग्रहो यस्य इति परम् । **सत्यात्मक प्राणारामं** सत्यं च आत्मा च प्राणश्च तेषामारामो यस्मिन् तथाभूतम् । यद् वा सत्यमात्मा आत्मवत् प्रिय: येषां ते सत्यात्मान: तेषां प्राणा: आरमन्ति यस्मिन् तत् सत्यात्मप्राणारामम् , इदं व्यूहात्मकंतस्मिन्नेव वासुदेवसङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरूद्धाभिधेये तस्यात्मनां श्रीवैष्णवानां प्राणा: रमन्ते । **मनआनन्दम्** मन:सु आनन्दो येन तथाविधम् इदं विभवात्मकं श्रीरामकृष्णादिरूपम् । तत्रैव श्रीवैष्णवभक्तानां मानसानन्ददर्शनात् । **शान्तिसमृद्धम्** अन्तर्यामिरूपं, प्रतिहृदयं ताटस्थ्येन शान्त्या विराजमात्वात् । **अमृतम्** मरणधर्मभिन्नम् आकल्पं शालग्रामादौ विराजमानत्वात् । विशेषविग्रहेषु लोकोत्तरचमत्कारदर्शनाच्च । यथा श्रीगिरिधरगोपालविग्रहस्य मीराविष सामर्थ्यापहरणगाथाया: प्रत्यक्षदर्शनं सत्येन प्रमाणितम् , इत्येव अर्चावतारस्य अमृतत्वं यन्मीरया निवेदितं विषमपि कृतममृतं तेन । अथेदं श्रीमकथाफलकेऽपि । **आकाश शरीरम्** श्रीरामश्याममूर्ति: अहल्योद्धारप्रसंगे । तत् कृपाकादम्बिनीवर्षणदर्शनात् । **सत्यात्मप्राणारामता** श्रीदशरथप्रसंगे सत्यात्मा दशरथ: तस्य प्राणा: श्रीराम एव रमन्ते ।

चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तदा ।
राजादशरथ: स्वर्गं जगाम विलपन् सुतम् ।।

वा०रा० १/१/३२,३३

मन आनन्दता अरण्ये मुनीनाम् । **शान्ति समृद्धि:** विभीषणशरणागतौ **अमृतत्वम्** लंकासमरभूमौ वानराणामुज्जीवने । एवं भूतं ब्रह्म श्रीराममुपास्स्व भजस्व । एवं श्रीराघवकृपालब्धमञ्जुलमनीषेण मया श्रुतिरियं सर्वतो नवीनदृष्ट्या व्याख्याता ।।श्री:।।

।। इति षष्टोऽनुवाक: ।।

।। श्रीराघवो: शन्तनोतु ।।

।। अथ सप्तमोऽनुवाक: ।।

अथ पाङ्तं निर्दिशति—

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिशः । अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि । आप ओषधयो । वनस्पतय आकाश आत्मा । इत्याधिभूतम् । अथाध्यात्मम् । प्राणो व्यानोऽपान उदानः समानः चक्षुः श्रोतं मनो वाक् त्वक् । चर्म माँ्सँ् स्नावास्थि मज्जा । एतधिविधाय ऋषिरवोचत् । पाङ्क्तं वा इदँ् सर्वम् । पाङ्क्तेनैव पाङ्क्तँ् स्पृणोतीति ।।१।।

पाङ्क्तं नाम पञ्चानां समूहः तत्र भूतेषु त्रीणि पाङ्क्तानि, भूम्याकाशस्वर्गदिशान्तरदिशानां प्रथमं पाङ्क्तं, द्वितीयमग्निवायुसूर्यचन्द्रतारकानाम् आत्मा अहङ्कार । जीवात्मा वा । एवं जलौषधि वनस्पति गगनजीवात्मानां तृतीयं पाङ्क्तम् । इदानीमध्यात्मं निरूपयति—

आत्मनि अधि अध्यात्मं, तत्र प्राणव्यानापानोदानसमानानां प्रथमम् । नेत्र श्रवणमनोवाणीत्वचां द्वितीयम् । चर्ममांसस्नावास्थिमज्जानां तृतीयम् । एवं षट् पाङ्क्तानि विभाव्य यत् सर्वं पाङ्क्तं पञ्चसमूहम् ।।श्रीः।।

।। इति सप्तमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथाष्टमोऽनुवाकः।।

अथाष्टमेऽनुवाके ओङ्कारमहिमानं गायति—

ओमिति ब्रह्म । ओमितीद ँ् सर्वम् । ओमित्येतदनुकृतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति । ओमिति सामानि गायन्ति । ओ ँ् शोमिति शास्त्राणि श ँ् सन्ति । ओमितध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति । ओमिति ब्रह्मा प्रसौति । ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति । ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति । ब्रह्मैवोपाप्नोति ।।१।।

ओम् श्रावयन्ति ह्योङ्कारं साम गायन्ति सामगाः ।
ओं शों शस्त्राणि शंसन्ति ओमध्वर्युर्गृणाति च ।।
ओमिति ब्रह्मा प्रस्तौति अग्निहोत्रं मुदा द्विजः ।
ओमित्येवानुजानाति ओमित्युच्चारयन् द्विजः ।।
ब्रवीति ब्रह्म सामीप्यात् ब्रह्माहं प्राप्नवानि वै ।
तस्मादोङ्काररूपेण व्याप्तमेतज्जगत् त्रायम् ।।श्रीः।।

।। इति अष्टमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ नवमोऽनुवाकः ।।

अथ ऋतादिभिः सह स्वाध्यायप्रवचनयोः अनिवार्यतां वर्णयति । ऋतादयो भवन्त्वेकैकशः, किन्तु स्वाध्यायप्रवचने प्रत्येकं सर्वैः सह इति विवेकः—

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च । तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च । दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च ।

शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च । अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजनश्च स्वाध्याय प्रवचने च । प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः । तप इति तपोनित्यः पौरूषिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ।।१।।

ऋतं यथार्थभाषणम्, सत्यम् यथार्थाचरणम्, स्वाध्याय, स्वशाखाप्राप्तवेदपाठः, प्रवचनं वेदाध्यापनम् ् सत्यम् अनिवार्यतया सत्यभाषणम् इति राथीतरः महर्षिराह । तप एव करणीयम् इति पौरूशिष्टिराह । नाको मौद्गल्यः स्वाध्यायप्रवचनं विधेयतया प्राह । यतो हि तदेव तपः ।।श्रीः।।

।। इति नवमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ दशमोऽनुवाकः ।।

मन्त्रोऽयं स्वाध्यायार्थं प्रयुज्यते—

अहं वृक्षस्य रेरिवा । कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि । द्रविण ँ् सवर्चसम् । सुमेधा अमृतोक्षितः । इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् ।।१।।

रीयते प्रेरयति इति रेरिवा, अहं स्वाध्यायशीलः वृक्षस्य क्षणभङ्गुरस्य शरीरस्य रेरिवा अन्तर्यामी । तथा हि गिरेः पर्वतस्य पृष्ठं शिखरमिव या कीर्तिः साप्यहम् । वाजमन्नं तद्वति वाजिनि सूर्ये इव अहम् ऊर्ध्वपवित्रः । एवंभूतं तेजोयुक्तम् अमृतम् अहमस्मि । द्रविणं धनम् , एवमृतं मरणधर्मवर्जितमिदं सर्वमहमस्मि । इदमेव वेदानुवचनं त्रिशङ्कोः ।।श्रीः।।

।। इति शमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ एकादशोऽनुवाकः ।।

अथ समावर्तनं श्रावयति श्रुतिः—

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्याययप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ।।१।।

देव पितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकँ सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि ।।२।।

नो इतराणि । ये के चास्मच्छ्रेयाँसो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् । अश्रद्धया देयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् । अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ।।३।।

ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः । युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु । ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः । युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तेषु वर्तेरन् । तथा तेषु वर्तेथाः । एष आदेशः । एष उपदेशः । एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमु चैतदुपास्यम् ।।४।।

गुरुकुले ब्रह्मचर्यं वसन्तं वेदमनूच्य सम्यक् पाठयित्वा अन्तेवासिनं गृहस्थाश्रममनुजानन् अनुशास्ति, आदिशाति । सत्यं भूतार्थं, स्वाध्यायाद् वेदपाठात् मा प्रमदः प्रमादं मा कार्षीः । आचार्याय समर्जितं निवेद्य दक्षिणारूपं प्रजातन्तुं सवर्णभार्यायां सत् सन्तानपरम्परां मा व्यवच्छेत्सीः, मा विलोपय, अन्यथा वर्णसंकरः स्यात् । कुशलात् शुभकर्मणः न प्रमदितव्यं प्रमत्तेन भवितव्यम् । भूत्यै धनाय, ऐश्वर्याय वा । स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां वेदाध्ययनवेदाध्यापनाभ्यां मा प्रमदितव्यं, तथा सति पूर्वाधीतो वेदराशिविस्मृतः स्यात् । माता देवः यस्य स मातृदेवः ।

यथा मम निर्मिते श्रीराघवाभ्युदय नाटके श्रीरामं प्रति वसिष्ठवचनम्—

सत्यं सदा वद समाचर वेदधर्मं
स्वाध्यायतस्तनय मा प्रमदः कदापि ।
गार्हस्थ्यधर्मनिरतो रमयंस्त्रिलोकीं
शोकं भुवः शमय भारतभाग्यभानो ।।

मातर्यथो पितरि चैव गुरौ तथैव
आगन्तुके कुरु सदा शुचिदेवबुद्धिम् ।
त्रैलोक्यवन्दितयशश्शशिना स्ववंशं
तातं तथा दशरथं रमयस्व राम ।।

राघवाभ्युदयम् ।।१८/१९।।

अत्र साम्प्रतिक परिप्रेक्ष्ये ममापि द्वे अनुशासने '''हिन्दुत्व देवो भव'' ''राष्ट्रदेवो भव'' इत्थं षट्सु देवबुद्धिःकर्तव्या ।

मातापित्रोस्तथाचार्ये स्वातिथावपि नित्यशः ।
देवबुद्धिर्विधातव्या हिन्दुत्वे राष्ट्र एव च ।।

अनवद्यानि अनिन्दितानि । श्रेयांसः श्रेष्ठाः ये त्वद्गुरुभ्याः प्रशस्यतराः तेषां कृते त्वया आसनेन आसनदानेन प्रश्वसितव्यं सत्करणीयम् । श्रद्धया आस्तिकबुद्धया, संविदा ज्ञानेन । यदि तव क्वचिकित्सा आचरणसन्देहः स्यात् , तदा तव समीपे ये ब्राह्मणाः चरित्रशीलाःताननुवर्तेथाः । इत्येवमादेशः आज्ञा, उपदेशः मधुरतया, वेदोपनिषत् वेदगुह्यज्ञानम् ।।श्रीः।।

।। इति एकादशोऽनुवाकः ।।

।। अथ द्वादशोऽनुवाकः ।।

अथ शिक्षाध्यायं विश्रयन्ती श्रुतिः पुनः शान्तिपाठं प्रभूतकालिकभङ्गिम्नाप्राह—

शं नो मित्रः शं वरूणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरूरूक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत । आवीन्माम् । आवीद्वक्तारम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।१।।

त्वां वायुमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म अवादिषमुक्तवानभूवम् । ऋतं यथार्थं यथाश्रुतं, सत्यं दृष्टं भूतार्थम् अवादिषं समचकथम् । अत एव भवानपि मां श्रुतिवक्तारम् उपदेष्टारम्, आवीत् अरक्षीत् ।।श्रीः।।

।। इति द्वादशोऽनुवाकः ।।

इति तैत्तिरीयोपनिषदि शिक्षावल्यां जगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं श्रीराघवकृपभाष्यं सम्पूर्णम् ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ ब्रह्मानन्दवल्ली ।।

।। शान्तिपाठः ।।

अथ तैत्तिरीयोपनिषदि द्वितीया ब्रह्मानन्दवल्ली याख्यायते तत्र द्वौ शान्तिपाठौ—

ॐ शन्नो मित्र, शं वरूणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्दरो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरूरूक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत् । आवीन्माम् । अवीद्वक्तारम् ।।१।।

ॐ सह नाववतु । सह नौ भनुक्तु । सहवीर्यं करवावहै ।

तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

तत्र प्रथमः प्रथमं व्याख्यातः, द्वितीयः कठोपनिषदि व्याख्यातपूर्वोऽपि साम्प्रतं व्याख्यायते । परब्रह्म परमात्मा नौ आचार्यशिष्यौ आवां सह युगपदेव न तु पृथक्पृथक् अवतु विपद्भ्यस्त्रायताम् । पुनः नौ आवामाचार्यशिष्यौ सह सममेव भुनक्तु पालयतु, निजकृपासुधाधारया । यत्तु भुनक्तु इत्यस्य ब्रह्मसुखं भोजयतु इति व्याख्यातं गोविन्दपादशिष्यशंकराचार्येण तद् व्याकरणविरुद्धत्वादुपेक्ष्यम् । भुनक्तु इति परस्मैपदलोट्लकारप्रथमपुरुषैक वचनरूपम् । तथा हि धातुः **भुजपालनाभ्यवहारयोः** (पा० धातुपाठ १४५४) पालने परस्मैपदं, तद्भिन्ने आत्मनेपदविधानात् । **भुजोऽनवने** पा०अ० १/३/६६ तस्मात् भुनक्तु इत्यस्य पालयतु इत्येवार्थः । अहो ! शंकराचार्यस्य दुराग्रहः यदद्वैतवादलोभेन व्याकरणर्यादामपि सहसावर्तते । तथा हि तदीयं भाष्याम् —**सह नौ भुनक्तु ब्रह्म भोजयतु** अत्र स प्रष्टव्यः , किं ब्रह्म भोजनीयं वस्तु? स्वमेव स्वयं कथं भोजयेत्, निर्धर्मतया तस्य कथं भोजनं शक्यं, तस्य तु ब्रह्मक्षत्रोपलक्षिताः प्रजा एव कठोपनिषदि भोज्यत्वेनोक्ताः ।

यथा–यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।।

(क०उ० १/२/२५)

अहो ! किमर्थं तिप्रत्ययद्योत्यपरस्मैपदवच्यपालनार्थमुपेक्ष्य भुज धातोः निरर्थकं भोजनवाच्यत्वं कल्प्यते । कथं वा शुद्धभुजधातोः अन्तर्भावितण्यर्थत्वकल्पनं, कथं वा ब्रह्मभोजनानुकूलव्यापारानुकूलव्यापारस्य स्वरसतो विरूद्धप्रलपनम् । एतस्या-

अघटनीयघटनावश्यकतायाः समुचितमुत्तरं त एव प्रयच्छन्तु । एवं नौ आवयोः आचार्यशिष्योः अधीतं वेदाध्ययनं तेजस्वि तेजोमयं अस्तु भवतु । आवां गुरुशिष्यौ मा विद्विषावहै परस्परं विद्वेषं मा करवावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।। यत्तु केचनमन्त्रमिमं भोजनकाले पठन्ति तत् **अकर्णान् मन्दकर्णाः श्रेयः** इति लौकिकोक्त्या नातिमात्रमाक्षिप्यते । यद्यपि मन्त्रोऽयमध्यायनकाले एव पठितव्यः ।।श्रीः।।

।। अथ प्रथमोऽनुवाकः ।।

अथ ब्रह्मणः स्वरूपलक्षणं ब्रह्माभिन्ननिमित्तोपादान कारणिकां सृष्टिं वर्णयति—

ब्रह्मविदाप्नोति परम् । तदेषाभ्युक्ता । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् । सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति । तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः । तस्येदमेव शिरः । अयं दक्षिणः पक्षः । अयमुत्तरपक्षः । अयमात्मा । इदं पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

ओमिति भगवत्स्मरणं, ब्रह्म विशिष्टाद्वैतप्रतिपाद्य सगुणसाकारं श्रीरामाख्यं, वेत्ति विन्दति वा इति ब्रह्मवित् । स परं सकलचिदचित्प्रपञ्चपरीभूतं परमात्मानमाप्नोति, सेव्यत्वेन लभते । तद् ब्रह्म कीदृशम् ? इत्यत आह—तत् तस्मिन् विषये एषा अनुपदमुच्यमाना इयमृगभ्युक्ता अभीष्टतया श्रुत्या उक्ता, ऋचमवतारयति—निजपतिं ब्रह्म श्रुतिरन्तरंगतया निरूपयति । तद् ब्रह्म सत्यं सदेव इति सत्यं, सच्छब्दात् प्रथमान्तात् अत्यन्त स्वार्थिको यत् प्रत्ययः, भत्वेन पदसंज्ञाबाधात् सत् इति तकारस्य न जस्त्वम् । नन्वस्यां व्युत्पत्तौ किं प्रमाणम् ? इति चेत् वैदिवमेव इति ब्रूमः । तथा च श्रुतिः **सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्** (छा०उ० ६/२/१), सद्भ्यः सज्जनेभ्यो महात्मभ्यो हितं सत्यम् इति भ्यसन्तसच्छब्दतः हितार्थे यत् प्रत्ययः **उगवादिभ्यो यत्** (पा०आ० ५/१/२) इति सूत्रेण । जानाति सर्वम् इति ज्ञानं **कृत्यल्युटो बहुलम्** (पा०अ० ३/३/११३) इत्यनेन बाहुलकात् कर्तरिल्युट् । यद् वा ज्ञायते सर्वैर्ज्ञानविषयः क्रियते इति ज्ञानं, अत्रापि उपर्युक्त सूत्रेणैव कर्मणिल्युट् । यद् वा ज्ञायते त्रैकालिकं वस्तु येन तज्जानं, ज्ञायते च सम्पूर्णं चराचरं यस्मिन्ननुकम्पमाने तज्ज्ञानम् । इह **करणाधिकरणयोश्च** (पा०अ० ३/३/११७) इत्यनेन करणेऽधिकरणे

च ल्युट् । यद् वा ज्ञायते इति ज्ञानं **ल्युट् च** (पा०अ० ३/३/११५) इत्यनेन भावे ल्युट् । एवं ज्ञानस्वरूपं ब्रह्म । अस्मन्मते ज्ञानाधिकरणत्वविवक्षायां भावल्युडन्त-ज्ञानशब्दात् प्रथमान्तात् षष्ठीसप्तम्योरर्थयोः मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः, अर्श आदिः । ज्ञानमस्त्यस्यस्मिन् वा तज्ज्ञानं इति विग्रहः । तथा अनन्तं न विद्यते अन्तः सीमा यस्य तदनन्तं सुखस्वरूपं **यो वै भूमा तत्सुखं** इति श्रुतेः । एवं भूतं सत्यं सत् ज्ञानं चित् अनन्तमानन्दमिति सच्चिदानन्दरूपं ब्रह्म गुहायां हृदयदेशे अन्तर्यामिरूपेण निहितम् । तथा परमे व्योमन् साकेतलोके निहितं सीतया सह विराजमानं, यो वेद जानाति सः विपश्चिता सर्वज्ञेण विदुषा ब्रह्मणा परमेश्वरेण सह सार्धमेव सर्वान् कामान् अभीष्टपदार्थान् भुङ्क्ते । एवंभूतात् तस्मात् साकेतविहारिणः श्रीरामात् तदभिन्नात् एतस्मात् अयोध्याधिपतेः श्रीदशरथपुत्रीभूतात् श्रीरामात् आत्मनः परमात्मनः सकाशात् आकाशः जीवात्मभोग्यपदार्थः प्रथमः शब्दगुणकः सम्भूतः । तस्माद्वायुः शब्दस्पर्शगुणकः । तस्मादाग्निः शब्दस्पर्शरूपगुणकः । तस्मादापः जलानि शब्दस्पर्शरूपरसगुणिकाः । ताभ्यः पृथिवी शब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणिका । ततः ओषधयः ततः अन्नमदनीयपदार्थः । तत एव पुरुषः शरीरावच्छिन्नो जीवः । विकारोऽचितिशरीरे, सः पुरुषः अन्नरसमय उभयप्रचुरः । तस्य इमानि प्रत्यक्षं दृश्यमानानि शिरः पक्षपुच्छानि । अत्र पुरुषोऽयं पक्षिरूपकः **दासुपर्णा** इति श्रुतेः । तथा हि इदं दृश्यमानं शिर एव तस्य शिरः, अयं दक्षिणो बाहुः तस्य दक्षिणः पक्ष, बाम बाहुः उत्तरः पक्षः । मध्यभागः आत्मा शरीरम् **आत्माशरीरे** इति कोषात् । इदं पुच्छं अधो भागः लम्बमानत्वत्तस्य पुच्छः । तत्रैव स प्रतितिष्ठति । अयं प्रथमः अन्नरसमयः पुरुषः शरीरावच्छिन्नः पक्षिरूपो जीवात्मा । ननु **सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विवश्चिता** इति श्रुत्यंशेन यदि ब्रह्मणोऽपि भोगः प्रतिपाद्यते, तर्हि दुर्निवारो भवति श्रुतिविरोधः । **अनश्नन्नन्यो** (मु०उ० ३/१/१) **भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा** (श्वे०उ० १/१२) इत्यादिभिः श्रुतिभिः ब्रह्मणे भोक्तृत्वाभावप्रतिपादनात् ? इति चैन्मैवं ! सह ब्रह्मणा इत्यत्र ब्रह्मणो वर्तमान क्रियायामन्वयेनादोषात् । अर्थात् ब्रह्मवेत्ता सामीप्यमुक्तिं सेवमानो ब्रह्मणा सह वर्तमानो भगवत्प्रसादभूतान् सर्वान् कामान् भुङ्क्ते, ब्रह्मत्वभोक्तृरूपमेव तिष्ठति । ननु तर्हि कथमभोक्तृत्वेऽपि श्री गीतानवमे भगवान् **अश्नामि** इति प्रतिजानाति ? बाढम् अनश्नन् इत्यत्र परमात्मनः कामभोक्तृत्वनिषेधेनादोषात् । श्रुत्या ईश्वरस्य कर्मफलभोगः प्रतिषिद्धयते । इति सर्व समञ्जसम् ।।श्रीः।।

।। इति प्रथमोऽनुवाकः ।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ द्वितीयोऽनुवाकः ।।

अथ द्वितीयेऽनुवाके प्राणपुरुषं वर्णयति—

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते । याः काश्च पृथिवीँ श्रिताः । अथो अन्नेनैव जीवन्ति । अथैनदपि यन्त्यन्ततः अन्नँ हि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात्सर्वौषधमुच्यते । सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते । अन्नँ हि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात्सर्वौषधमुच्यते । अन्नाद् भूतानि जायन्ते । जातान्यन्नेन वर्धन्ते । अद्यतेऽत्ति च भूतानि । तस्मादन्नं तदुच्यत इति । तस्मद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योऽन्यन्तर आत्मा प्राणमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्राण एव शिरः । व्यानो दक्षिणः पक्षः । अपान उत्तरः पक्षः । आकाश आत्मा । पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

पृथिव्यां याः काश्चन चिदचिदात्मिकाः प्रजाः स्थिताः ता अन्नात् अन्नपरिणामभूतरेतसः जायन्ते । तेन जीवन्ति, अन्ततः अन्नमेव अपियन्ति प्रलयं यान्ति अतस्तस्मिन् जगज्जन्मादिकारणता आपाततः संघटते । तस्मात् अन्नं ब्रह्म, तद् ब्रह्मबुद्धया उपासीत । तस्य दुरुपयोगो न कर्तव्यः इति श्रौतोऽभिप्रायः । कथं ब्रह्म अन्नम् ? इत्यत आह— यतो हि अन्नं निमित्तीकृत्य प्रजानां जन्मसंवर्धनप्रलयाः । अन्नशब्दस्य द्वेधा व्युत्पत्तिः अत्तीत्यन्नं **कर्तरिक्तः** अद्यते इत्यन्नम् । एवं तस्मादन्नरसमयात् प्राणः प्राणमयपुरुषो जायते सोऽपि पक्षी । तस्य प्राणः शिरः, व्यानः दक्षिणः पक्षः, अपानः उत्तरः निर्गमने सहायकत्वात् । आकाश एव आत्मा शरीरं, पृथिवी एव पुच्छमाश्रयत्वात् ।।श्रीः।।

।। इति द्वितीयोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ तृतीयोऽनुवाकः ।।

अथ तृतीये मनोमयं पुरुषं मनुते—

प्राणं देवा अनुप्राणन्ति । मनुष्याः पशवश्च ये । प्राणो हि भूतानामायुः । सत्मात् सर्वायुषमुच्यते । सर्वमेव त आयुर्यन्ति ये प्राणं ब्रह्मोपासते । प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति । तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयादन्योऽन्तर आत्मा मनोमय । तेनैष

पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः । तस्य यजुरेव शिरः ऋग्दक्षिणः पक्षः । सामोत्तरः पक्षः । आदेश आत्मा । अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रातिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।।३।।

प्राणमाश्रित्यैव देवमनुष्यपशूनां प्राणनात् तत् सर्वायुषं कथ्यते । तस्मात् प्राणात् अन्तरः विलक्षणो मनोमयः पुरुषो भवति । एवं सोऽपि पक्षीव । अतः—

यजुः शिरो दक्षः पक्ष ऋक उत्तरः साम ईर्यते ।
आदेशात्मा तथा पुच्छं प्रतिष्ठार्थवणि श्रुतिः ।।श्रीः।।

।। इति तृतीयोऽनुवाकः ।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ चतुर्थोऽनुवाकः ।।

अथ चतुर्थेऽनुवाके मनोमयं व्याचष्टे—

यतो वाचो निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कदाचनेति । तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयादन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयस्तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरूषविध एव । तस्य पुरुषविधातामन्वयं पुरुषविधः । तस्य श्रद्धैव शिरः । ऋतं दक्षिणः पक्षः । सत्यमुत्तरं पक्षः । योग आत्मा । महः पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

यतः यस्मात् तमप्राप्येव मनसा सह वाचः वाण्यः निवर्तन्ते जडत्वात् । तस्य ब्रह्मणः आनन्दं सारभूतमानन्दं विद्वान् जानन् कदाचन न बिभेति । तस्य प्राणमयस्य एषः शरीर एव आतमा । अयमेव शरीरः अन्नमयस्यापि आत्मा, तस्मात् एतस्मात् अयमेव शारीरः अन्नमयस्यापि आत्मा, तस्मात् एतस्मात् मनोमयादपि अन्तरः विलक्षणः विज्ञानमयः विज्ञानमत्र बुद्धिः सोऽपि पक्षी, तस्य श्रद्धा आस्तिकबुद्धिः शिरः ऋतं यथाश्रुतभाषणं दक्षिणः पक्षः । सत्यं यथादृष्टकथनं उत्तरं पक्षः, योगः, आत्मा, शरीरं महः, तेजः पुच्छमधोभागः । प्रतिष्ठा चरणात्मकः ॥ श्रीः ॥

।। इति चतुर्थोऽनुवाकः ।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ पञ्चमोऽनुवाकः ।।

अथ पञ्चमानुवाके आनन्दमयं पुरूषं वर्णयति—

विज्ञानं यज्ञं तनुते । कर्माणि तनुतेऽपि च । विज्ञानं देवाः सर्वे । ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते । विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद । तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति । शरीरे पाप्मनो हित्वा । सर्वान्कामान्समश्नुत इति । तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञान– मयादन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः । तेनेष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्रियमेव शिरः । मोदो दक्षिणः पक्षः । प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

विज्ञानं बुद्धिः बुद्धिमान् यज्ञान् कर्माणि च करोति, अत एव ब्रह्मवेदः ज्येष्ठं यस्य तद् विज्ञानम् अध्यात्मनिरतां बुद्धिं सर्वे देवाः उपासते पूजयन्ति । एवं विज्ञानमेव ब्रह्मबुद्ध्या यः वेद जानाति, स कदापि न प्रमाद्यति । बुद्धौ चञ्चलायां प्रमादः, तस्यां ब्रह्ममत्वमागतायां प्रमादस्यावसर एव न । एवं तस्मात् शरीरस्य पाप्मनः पापानि । पाप्मन् शब्दः पापःपर्यायः । **अघमेनः प्रत्यवायः पाप्म पापं च पातकम्** इति कोषात् । सर्वान् कामान् भगवदनुग्रहप्राप्तान् समश्नुते प्राप्नोति । तसमाद् विज्ञानमयात् अन्तः विलक्षणः आत्मा आनन्दमयः आनन्द प्रचुरः । सोऽपि पक्षीव । तस्य प्रियं शिरः मूर्धस्थानम् । मोदः दक्षिणः पक्षः । प्रमोदः इष्टलाभजनितप्रसन्नता, उत्तर पक्षः । आनन्दः आत्मा शरीरम् । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठां अधोभागः आधारः । अत्रेदमवधेयम्— एकैव प्रत्यगात्मा यथायथं पञ्चकोशावच्छिन्नः पञ्चपक्षिरूपकतामाटीकते । परन्तु शरीरे परिवर्तितेऽपि आत्मास्वरूपमेकमेव । यथैको नटः तत्तत् परिधानवैचित्र्येण कदापि भिक्षुः कदापि राजा, कदापि च श्रेष्ठी, कदाचित् रङ्कः, कदाचित् क्रूरो दृश्यते । परन्तु मूलरूपेण स नट एव, तथैवायं प्रत्यगात्मा अन्नरसमयकोषावच्छिन्नः, अस्मदादिदर्शनगोचराणि शिरोहस्तमध्यभागचरणादीनि स्वीकरोति । पुनः स एव स्वरूपं परिहरन् वेशपरिवर्तनं कुरुते । तथा प्राणमयकोषावच्छिन्नः पूर्वतो विलक्षणः शरीरवान् शिरःपक्षद्वयमध्यभागनिम्नकायस्थानेषु प्राणापानव्यानाकाशपृथिवीः आलम्बते । पुनः स एव मनोमयकोषावच्छिन्नः प्राणमयतो विलक्षणशरीरः । पुनः पूवोक्तावयवरूपाणि ऋग्यजुःसामादेशाथर्वाख्यानि प्राप्नोति । पुनश्च स्वस्वरूपमजहत् विज्ञानमयकोषावच्छिन्नः पूर्वविलक्षणविज्ञानमयशरीरवान् भवति । तस्य श्रद्धा शिरःस्थाने, दक्षिणपक्षरूपं ऋतं, वामपक्षतां सत्यं, योगः शरीरं, महः पुच्छस्थानतां प्राप्नोति । पुनश्चायं पञ्चमम्

अन्तिमं वेशं परिवर्तयति आनन्दमयकोषावच्छिन्न: प्रियमेव शिरोरूपं, मोदं दक्षिणपक्षमिव, प्रमोदं वामपक्षस्थाने, आनन्दं मध्यभागं, पुच्छमिव ब्रह्मप्राप्य आनन्दमय: कथ्यते। परन्तु पञ्चष्वप्यवस्थासु स्वस्वरूपप्रत्यगात्मतात्वं नायं त्यजतीति सूक्ष्मेक्षिका ।।श्री:।।

।। इति पञ्चमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ षष्ठोऽनुवाकः।।

अथ ब्रह्मविज्ञानाविज्ञानफलं वर्णयति—

असन्नेव स भवति । असद्ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद । सन्तमेनं ततो विदुरिति । तस्यैव एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य । अथातोऽनुप्रश्नाः । उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चन गच्छती ३। आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चित्समश्नुता ३ उ । सोऽकामयत । बहु स्यां प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा इद ँ सर्वमसृजत यदिदं किञ्च । तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् । निरुक्तं चानिरुक्तं च । निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च । सत्यं चानृतं च सत्यमभवत् । यदिदं किंच । सत्सत्यमित्याचक्षते । तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

य: नर: ब्रह्म असत् नास्ति इति इत्थं वेद जानाति, स असन् दुष्टो भवति। यदि कोऽपि ब्रह्म अस्ति ईश्वरो वर्तते इति वेद तदा एनं ब्रह्मास्तित्ववेदिनं जना: सन्तं मत्वा उपासते सेवन्ते। अनन्तरं त्रय: प्रश्ना: भवन्ति, ब्रह्मवर्तते न वा ? इति प्रथम: प्रश्न:। यदि वर्तते सर्वव्यापकं किमज्ञा अपि तत् प्राप्नुवन्ति अथवा विद्वांस एव तत् प्राप्नुवन्ति ? तान् प्रश्नान् अनुवदति। यथेत्यादिना—अविद्वान् ब्रह्मज्ञानशून्य: कश्चन कोऽप्येक: प्रेत्य शरीरं त्यक्त्वा अमु लोकं ब्रह्मसामीप्यभाजनं साकेतलोकं गच्छति प्राप्नोति। उत किम् ? अस्ति कोऽपि ब्रह्मज्ञानशून्य: यो ज्ञानं विनापि ब्रह्म प्राप्नोति। आहो पक्षान्तरे कश्चन विद्वान् ब्रह्मज्ञ एव देहं त्यक्त्वा अमुंलोकं समश्नुते ? उ वितर्के। अथ चिदचिद्विशिष्ट: परमात्मा अकामयत् इच्छामकरोत्। यत् प्रजायेय कार्यरूपेणात्मानं परिणमयेय, अतस्तत्तच्छरीरेषु अन्तर्यामी भूत्वा बहुस्याम बहु भवेयम्। अत एव ज्ञानरूपं तप: अतप्यत्, तेन जगदिदं जडचेतनात्मकम् असृजत् रचयामास।

किन्तु जगत् सृष्ट्वा तदेव अनुकूलतया प्राविशत् प्रवेशं कृतवान् । भगवति प्रविष्टे तत् पृथिवीजलरूपेण सत् । एवं वायुनभोरूपेण त्यत्, द्वेमिलित्वा सत्यं चिदचिदात्मकं निरुक्तमनिरुक्तम्, आश्रयमनाश्रयं, सत्यम् असत्यम् इति गुणदोषात्मकं जगत् स्वयमेव अभवत्, इति ब्रह्मपरिणामवादः ।।श्रीः।।

।।इति षष्ठोऽनुवाकः।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ सप्तमोऽनुवाकः।।

अथ पुनः सृष्टिक्रममभ्यसति––

असद्वा इदमग्र आसीत् । ततो वै सदजायत । वदातमनँ्स्वयमकुरुत । तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति । यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः । रसँ् ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति । को ह्येवान्यात्कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् । एष ह्येवानन्दयाति । यदा ह्येवेष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते । अथ सोऽभयं गतो भवति । यदा ह्येवैष एतास्मिन्नुदरमनतरं कुरुते । अथ तस्य भयं भवति । तत्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य । तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

अग्रे सृष्टेः प्राक् इदं जीवजगत् असत् अव्याकृतनामरूपम् यद् वा अकारे वासुदेवे सीदति तिष्ठति इत्यसत्, परमात्मा स्थमासीत् । वै निश्चयेन प्रलये परात्मस्थत्वे जीवस्य न कोऽपि सन्देहः । ततः अकाराद् वासुदेवादेव, वै निश्चयेन सत् व्याकृतनामरूपं जीवजगत् अजायत, कर्मफलभोगार्थं शरीरधारणमकरोत् । तत आत्मानं स्वयमकुरुत परिणामिनं कुरुते स्म । अत एव तत्सुकृतं कथ्यते, परमात्मपरिणामभूततया । इत्यनेन श्रुत्यंशेन विवर्तवादः स्वयं निराकृतः । यतो हीदं भगवत् प्रविष्टम्, अतः सुकृतम् । एवं यच्चराचरं तत्सुकृतं शोभनं कृतम् । तस्य शोभनतां प्रतिपादयति–वै निश्चयेन सः परमात्मा रसः **रसो रागे बले सारे** इतिकोषात् । सर्वेषां सारभूतः बलं रागः आनन्दश्च, तस्मात् स्वं परिणमय्य तेन परमात्मना कृतं जगत् कथं न सुकृतं स्यात् । हि निश्चयेन रसं परमात्मानमेवलब्ध्वा सेव्यत्वेन प्राप्य अयं जीवात्मा आनन्दी भवति । यदि चेत् आकाशः अवकाशदाता आनन्दः रसरूपः परमात्मा न स्यात्, तदा को नाम जन्तुः अन्यात् प्राणधारणं कर्तुं शक्येत, कः प्राण्यात् प्रकर्षेण जीवेत् । अयमेव चिदचिदात्मकं जगत् आनन्दयाति आनन्दाप्लुतं करोति । यदा अयं जीवात्मा अस्मिन् आनन्दरूपे अदृश्ये, प्राकृतेन चक्षुषा द्रष्टुमशक्ये अनात्म्ये प्राकृतशरीरवर्जिते,

अनिलयने विष्णोरपि निलयभूते सर्वाधारतया आश्रयहीने, अनिरुक्ते निर्वक्तुमशक्ये, अभयं निर्भयं प्रतिष्ठां प्रपत्तियोगेन स्वाश्रयं विन्दते, सः अभयं परमात्मानं गतो भवति। अथ एतद् विपरीतं यदि जीवात्मा एतस्मिन् परमात्मनि उदरम् अन्तरं किञ्चिदपि अन्तरं कुरुते, सम्बन्धतः कल्पयति भेदं, नैवायं मम स्वामी, अहं नास्मि भगवदीय इत्याकारकं, तदैव तस्य भयं भवति। तादृशं भयं अमन्वानस्य तिरस्कुर्वतः विदुषः ब्रह्मज्ञस्य एषः श्लोकः भवति ॥ श्रीः ॥

।।इति सप्तमोऽनुवाकः।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथाष्टमोऽनुवाकः।।

अथ ब्रह्मज्ञदशां वर्णयति—

भीषास्माद् वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति । सैषानन्दस्यमीमाँ्सा भवति । युवा स्यात्साधुयुवाध्यापक आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठस्तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् । स एको मानुष आनन्दः । ते ये शतं मानुषा आनन्दाः ।।१।।

स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामान्दाः । स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः । स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ये ते शतं पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दाः । स एक आजानजानां देवानामानन्दः ।।२।।

श्रोत्रिस्य चाकामहतसय । ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः । स एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः । ये कर्मणा देवानपियन्ति । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः । स एको देवानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं देवानामानन्दाः । स एक इन्द्रस्यानन्दः ।।३।।

श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः । स एको बृहस्पतेरानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः । स एकः प्रजापतेरानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं प्रजापतेरानन्दः । स एको ब्राह्मण आनन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।।४।।

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः स य एवं विदस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति । तदप्येष श्लोको भवति ।।५।।

एवं यः अक्षिगतः पुरुषः स एवादित्ये, इत्थं जानन् ब्रह्मज्ञः अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयकोषान् समतिक्रामति ।।श्रीः।।

।। इति अष्टमोऽनुवाकः।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ नवमोऽनुवाकः।।

अथ ब्रह्मज्ञमहिमानं वर्णयति—

यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान न बिभेति कुतश्चनेति । एतँ् ह वाव न तपति । किमहँ् साधु नाकरवम् । किमहं पापमकरवमिति । स य एवं विद्वानेते आत्मानँ् स्पृणुते । उभे ह्येवैष एते आत्मनँ् स्पृणुते । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ।।१।।

यस्मात् अनुपलभ्यैव मनसा सह वाचः निवर्तन्ते, तं ब्रह्माभिन्नम् आनन्दं विद्वान् जानन् उपासीनः कुतश्चन कस्माच्चनापि जनात् न बिभेति । तम् अहं किं साधु सुन्दरं कर्म नाकरवं, अथवा असाधु नकृतवान् इति विचारो न तपति । एवम् उभे अपि शुभाशुभे विदिततत्वं जीवात्मानं स्पृणुते प्रसन्नं कुरुतः ।।श्रीः।।

।।इति नवमोऽनुवाकः।।

इति तैत्रिरीयोपनिषदिब्रह्मवल्यांजगद्गुरु रामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं श्रीराधवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ भृगुवल्ली ।।

मंगलाचरणम्

ॐ। सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः। शान्तिपाठो व्याख्यातपूर्वः ॥

।। अथ प्रथमोऽनुवाकः ।।

अथ भृगुवल्यां ब्रह्मणस्ताटस्थ्यलक्षणं मीमांस्यते—

भृगुर्वै वारुणिः पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तस्मा एतत्प्रोवाच। अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति। तँ् होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति । स तपोऽतत्यत । स तपस्तप्त्वा ।।१।।

वरुणस्य अपत्यं पुमान् वारूणिः, वरूणमहर्षिपुत्रः भृगुः निजपितरमुपससार उपसृत्य निवेदयामास भगवन्! मां ब्रह्म अधीहि। स पिता शाखाचन्द्रन्यायेन पूर्वम् अन्न प्राणचक्षुःश्रोत्रमनोवाक्षु ब्रह्मबुद्धिं समुपदिश्य, अनन्तरं ब्रह्मणस्तटस्थलक्षणं प्राह– हे भृगो। वै निश्चयेन यतः यस्माद् ब्रह्मणः सकाशाद् इमानि भूतानि चिदचिदात्मकानि जायन्ते प्रादुर्भवन्ति। जातानि च येन पाल्यमानानि जीवन्ति। यत् प्रलयकाले प्रयन्ति प्रयाणं कुर्वाणानि अभिसंविशन्ति, अभीष्टतया। एवं भूतं जगज्जन्मस्थितिलयकारणं विजिज्ञासस्व विशिष्टाद्वैतपद्धत्या ज्ञातुमिच्छ, विचारय वा। यतो हि तत् भूतजन्मस्थितिलयकारणं ब्रह्म इति। इदं तटस्थलक्षणं श्रुत्वा सः तपः अतप्यत, ब्रह्म आलोचितवान् अनन्तरं ब्रह्म आलोच्य भृगुः पितरमागत्य किं कृतवान्? इत्यत आह ।।श्री:।।

।। इति प्रथमोऽनुवाकः।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ द्वितीयोऽनुवाकः।।

पुनर्भृगोर्जिज्ञासातारतम्यं वर्णयति—

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव

वरूणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तँ्होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतत्यत । स तपस्तप्त्वा ।।१।।

विचार्य भृगुः अन्नं ब्रह्म इति व्यजानात् । तत्र वरूणप्रोक्तं लक्षणं संगमयामास जगज्जन्मादिकारणरूपम् । तद् विज्ञाय लक्षणोपपत्तिभ्यां विचारयामास, अन्नादित्यादिना । अन्नाज्जीवानां जन्म, तेन जीवनं, तस्मिन् लयः । पुनः पितरमुपागमत् । एतदनन्तरमधीहि । पिता प्रोवाच–तपसा पुनर्ब्रह्म विजिज्ञासस्व, यतो हि तप एव ब्रह्म तत्प्राप्तिसाधनम् ।।श्रीः।।

।।इति द्वितीयोऽनुवाकः।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ तृतीयोऽनुवाकः।।

भूयो भृगुजिज्ञासा प्रकारमाह—

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् । प्राणद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । प्राणेन जातानि जीवन्ति । प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय पुनरेव वरूणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तँ्होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतत्यत । स तपस्तप्त्वा ।।१।।

भृगुस्तपस्तप्त्वा विचार्य प्राण एव पित्रोक्तं जगज्जन्मादिकारणत्वं संगमय्य, तमपि ब्रह्मेति व्यजानात् निर्धारयामास । पितरंगतः पित्रा पुनस्तपसे निर्दिष्टः ।।श्रीः।।

।।इति तृतीयोऽनुवाकः।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ चतुर्थोऽनुवाकः।।

अथ भूयो भृगुजिज्ञासां वर्णयति—

मनो ब्रह्मेति व्यजानात् । मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । मनसा जातानि जीवन्ति । मनः प्रयन्त्यभिसं विशन्तीति ।तद्विज्ञाय पुनरेव वरूणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तँ्होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्च । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ।।१।।

पुनः विचारं कृत्वा मनसि "यतो वा" इत्यादि लक्षणं संगमय्य तस्मिन्नेव जगज्जन्मकारणत्वं समालोच्य मनोब्रह्म इति निर्धारयामास भृगुः। पुनः पितरं गतः तेन तपसे निर्दिष्टः ।।श्रीः।।

।।इति चतुर्थोऽनुवाकः।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ पञ्चमोऽनुवाकः।।

भूयो भृगुजिाासाक्रममवतारयति—

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। त ँ् होवाच। तपसा ब्रह्मविजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतपयत। स तपस्तप्त्वा।।१।।

भूयो विचारं कृत्वा विज्ञानं जीवात्मानमेव ब्रह्मेति निश्चिकाय। **विज्ञानादेव** इत्यादिभिः तस्मिन् ब्रह्मलक्षणं निदिध्यासितवान्। पुनः तिपरं गतः तपसा ब्रह्मविजिज्ञासस्व इति तपसे निर्दिष्टः ।।श्रीः।।

।। इति पञ्चमोऽनुवाकः ।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ षष्ठोऽनुवाकः।।

अथ भार्गवी विद्यामुपसंहरति—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रत्यभिसंविशन्तीति। सैषा भार्गवी वारूणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। य स एवं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति, प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।।१।।

पित्रानिद्रिष्टो भृगुस्तपस्तप्त्वा पर्यालोच्य आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात निश्चिकाय। तस्मिन् ब्रह्मणि जगज्जन्मादिकारणत्वमपि सङ्गमयामास। तत्सङ्गमनं स्पष्टयति आनन्दात्

इत्यादिना । हि यतो हि आनन्दात् एव नत्वन्यस्मात् इमानि भूतानि चिदचिदात्मकानिअतो जायन्ते तस्मात् जगज्जन्मकारणत्वं यतो वा इत्यादि निर्दिष्टं संघटते । आनन्देन करणीभूतेन जातानि भूतानि जीवन्ति अतो जगत्पालनहेतुत्वमस्मिन् । आनन्दमेव प्रयन्ति प्रयाणं कुर्वाणानि अभिसम्विशान्ति प्रविश्य लीयन्ते अतो जगज्जन्मादिहेतुत्वात् आनन्दो ब्रह्म । एतद्विचार्य शान्तजिज्ञासो भृगुः पुनः पितरं नोपससार तस्मात् आनन्दस्य ब्रह्मत्वं वरुणसम्मतम् । इदं द्योर्तायतुमाह–सैषेत्यादि । भृगोरियं भार्गवी वरुणस्य इयं वारुणी । परमे व्योमन् परब्रह्मणि प्रतिष्ठिता । एवान् जानन् अन्यप्रजापशुभिर्युक्तः परब्रह्म प्राप्नोतीति फलितार्थः ।।श्रीः।।

।। इति षष्ठोऽनुवाकः ।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ सप्तमोऽनुवाकः।।

अथान्नं प्रसंशति—

अन्नं न निन्द्यात् । तद्व्रतम् प्राणो वा अन्नम् । शरीरमन्नादम् । प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम् । शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ।।१।।

अन्नं भक्षणीयपदार्थं न निन्द्यात् । भगवदीयं मत्वा भुञ्जीत । यतो हि शरीरमन्नादं प्राणस्तस्मिन् । अतो हेतो तद्तद् ब्रह्मबुद्ध्या रक्षणीयं एतद् विदन् अन्नप्रजापशुभिः ब्रह्मतेजसा युज्यते इति सारांशोऽनुवाकस्य ।। **श्रीः।।**

।।इति सप्तमोऽनुवाकः ।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथाष्टमोऽनुवाकः।।

अथान्नपरिहरणं निषेधति—

अन्नं न परिचक्षीत । तद् व्रतम् । आपो वा अन्नम् । ज्योतिरन्नादम् । अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् । ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः । । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान्भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसेन । महान्कीर्त्या ।।१।।

अन्नं भक्षणीयपदार्थं हेय बुद्ध्या न परिचक्षीत न विलोकयेत् । भोजनार्थमागतं वस्त्रेणाच्छाद्यैव समाहरेत् । तद्व्रतम् । आप: जलानि अन्ने प्रतिष्ठिता: । अप्सु जलेषु ज्योति: प्रतिष्ठितम् । एवं भगवद् बुद्ध्यैव दृष्टिदोषं निवार्य भगवद्प्रसादं सेवमान: संयुज्यते पूर्वोक्तफलै: इति सारांश: ।।श्री:।।

।। इत्यष्टमोऽनुवाक: ।।
।। श्रीराघवो: शन्तनोतु ।।

।। अथ नवमोऽनुवाक: ।।

अन्ते श्रुत्ति: अन्नोत्पादनं विधेयतया निर्दिशति—

अन्नं बहु कुर्वीत । तद्व्रतम् । पृथिवी वा अन्नम् । आकाशोऽन्नाद: । पृथिव्यामाकाश: प्रतिष्ठित: । आकाशे पृथिवी प्रातष्ठिता । तदेतमन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठिति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ।।१।।

अन्नं भक्षणीयं बहु कुर्वीत । गोधूमतण्डुलादिकं गोमयोर्वरकेण बहु कुर्वीत बहु उत्पादयेत् इत्यनेन गोधनरक्षणं कृषीबलप्रोत्साहनं च श्रुत्येव निर्दिश्यते । पृथिवी अन्नम् । पार्थिवानि भक्षणीयानि । आकाश: अन्नाद: भक्षयिता उभौ उभयो: प्रतिष्ठितौ । एवं विद्वान् अन्नपशुप्रजाब्रह्मवर्चसै: संयुज्यते ।।श्री:।।

।। इति नवमोऽनुवाक: ।।
।। श्रीराघवो: शन्तनोतु ।।

।। अथ दशमोऽनुवाक: ।।

न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत । तद्व्रतम् । तस्माद्यया कया च विधया वह्वन्न प्राप्नुयात् । आराध्यास्मा अन्नमित्याचक्षते । एतद्वै मुखतोऽन्नँ् राद्धम् । मुखतोऽस्मा अन्नँ् राध्यते । एतद् वै मध्यतोऽन्नँ् राद्धम् । मध्यतोऽस्मा अन्नँ् राध्यते । एतद्वा अन्ततोऽन्नँ् राद्धम् । अन्ततोऽस्मा अन्नँ् राध्यते ।।१।।

वसतौ गृहे कन्चन कमपि जनं भुञ्जानं न प्रत्याचक्षीत न निषेधेत् । तद्व्रतम् तादृशं भगवद्परितोषणव्रतम् । अत्र श्रुति: यथेष्टभोजनं सर्वेषां विधत्ते । अतो भूर्यन्नमुत्पादयेत् इति निष्कर्ष: ।।श्री:।।

इदानिं मानसी दैवी समाज्ञे वर्णयति—

य एव वेद । क्षेम इति वाचि । योगक्षेम इति प्राणापानयोः । कर्मेति हस्तयोः । गतिरिति पादयोः । विमुक्तिरिति पायौ । इति मानुषीः समाज्ञाः । अथ दैवीः । तृप्तिरिति वृष्टौ । बलमिति विद्युति ।।२।।

वाचिक्षेमं तथा योगक्षेमौ प्राणे ह्यपानके ।
करे कर्म गतिः पदे पायौ मुक्तिः तथैव च ।।

तृप्तिर्वृष्टौ बलं चैव चपलायामपेक्षते ।
मानुषी देवसम्बद्धधा समाज्ञेऽयं श्रुतीरिता ।।श्रीः।।

यश इति पशुषु ज्योतिरिति नक्षत्रेषु । प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे । सर्वमित्याकाशे । तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत । प्रतिष्ठावा् भवति । तन्मह इत्युपासीत । महान् भवति । तन्मन इत्युपासीत । मानवान् भवति ।।३।।

पशौ यशश्च नक्षत्रे ज्योतिः शुद्धमपेक्षते ।
उपस्थे च प्रजातिर्वै अमृतानन्दने तथा ।।श्रीः।।

तन्नम इत्युपासीत । नम्यन्तेऽस्मै कामाः । तद्ब्रह्मेत्युपासीत । ब्रह्मवान् भवति । तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत । पर्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः । परि येऽप्रिया भातृव्याः । स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः ।।४।।

एवमेव नम इत्युपासनीयं तेन सर्वे नमन्ति एवं ब्रह्म समुपासनीयं तस्य परिमरः संहारशक्तिरुपासनीयः । यथा समुपासकस्य अप्रियाः म्रियन्ताम् ।।श्रीः।।

अथ फलश्रुतिमाह—

स य एवंवित् । अस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य । इमाल्लोकान्कामान्नी कामरूप्यनुसंचन् । एतत्साम गायन्नास्ते । हा ३ वु हा ३ बु हा ३ बु ।।५।।

एतद्वेत्ता अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयान् कोषान् अतिक्रम्य यथा कामं भगवल्लोकेषु सञ्चरति ।।श्रीः।।

अत्र भोक्तृभोग्ययोरैकात्म्यं वर्णयति—

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादो ३ऽहममन्नादो ३ऽहमन्नादः । अह ँ श्लोककृदह ँ श्लोककृदह ँ श्लोककृत् । अहमस्मि प्रथमजा ऋता

३ स्य । पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना ३ भायि । यो मा ददाति स इदेव मा ३ वाः । अहमन्नमन्नमदन्तमा ३ द्मि । अहं विश्वं भुवनमभ्यभवा ३ म् । सुवर्न ज्योतीः य एवं वेद इत्युपनिषत् ।।६।।

अहमन्नं कस्यचिद् भक्ष्यं, कालस्योति भावः । पुनश्चाहं अन्नादः गोधूमादीनां भक्षकः अहमेव सर्वज्येष्ठो जीवात्मा सुवर्णज्योतिः परमप्रकाशवान् परब्रह्म श्रीराघवनित्यकिङ्करः च एवं वेत्ति स ब्रह्मलोके महीयते । इत्येषा तैक्तियोपनिषत् ।

तैक्तिरयोपनिषदो रामभद्रार्यसूरिणा ।
श्रीराघवकृपाभाष्यं कृतं सीतापतेर्मुदे ।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं श्रीराघवकृपाकृतम् ।
श्रीराघवकृपां देयात्श्रीराघवकृपाफलम् ।।श्रीः।।

इति श्री चित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं तैत्तिरीयोषपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

●

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

तैत्तिरीयोपनिषद्

श्रीराघवकृपाभाष्य

श्री तैत्तिरीयोपनिषद् का
पदवाक्यप्रमाणपारावारीण-
कवितार्किकचूडामणि वाचस्पति-
श्री जगद्गुरूरामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्य-
प्रणीत श्रीमज्जगद्गुरुरामानन्दाचार्यसम्प्रदायानुसारि
विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त-प्रतिपादक श्रीराघवकृपाभाष्य ।।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

अथ तैत्तिरीयोपनिषद्

श्रीराघवकृपाभाष्य

।। मङ्गलाचरण ।।

जनकजापते जह्नुकन्यका जनककार्मुकज्यारवव्रतिन् ।
जनकतापहन् जैत्रविक्रम जनकलिं हरे जारय द्रुतम् ।।१।।

तैत्तिरीय उपनिषद् ब्रह्म लक्षण रस निर्भर,
पिता पुत्र संवाद विशिष्टाद्वैत सुधाकर।
सीताराम पवन सुत चरन कमल सिर नाई,
श्रीराघवकृपाभाष्य भासि हो विसद बनाई।।
युक्तियुक्त संगत गिरा श्रुति संमत अविकार्य की,
सावधान सुनिये भणिति रामभद्रआचार्य की।।

सम्बन्ध– अब तैतिरीयोपनिषद् श्रीराघवकृपाभाष्य नामक विवरण से विभूषित की जा रही है। यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीयशाखा में कही गयी है। इसलिए इसे तैत्तिरीयोपनिषद् कहते हैं। इसी उपनिषद् में ब्रह्म का तटस्थ लक्षण महर्षि वरुण द्वारा अपने पुत्र के प्रति कहा गया है और इसी उपनिषद् में ब्रह्मजिज्ञासा की बड़ी मनोहर विवेचना प्रस्तुत की गयी है। इसलिए यह कहते हुए हर्ष का अनुभव होता है कि— ब्रह्मसूत्र का शुभारम्भ भी इसी तैत्तिरीय उपनिषद् के द्वितीयवल्ली के आधार पर

किया गया। इसमें शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली तथा भृगुवल्ली इन तीन विभागों में ब्रह्मतत्व की बड़ी सरस मीमांसा की गयी है।। श्री।।

अत: इस पर व्यवस्थित विचार करने के लिए श्री राघवकृपाभाष्य नामक शास्त्रीयव्याख्याप्रबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है। अब शिक्षावल्ली का प्रथम अनुवाक् व्याख्यायित किया जायेगा। जो इस उपनिषद् का शान्तिपाठ भी है।। श्री।।

।। शिक्षावल्ली ।।

।। अथ प्रथम-अनुवाक ।।

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब शिक्षा अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है। जिसके द्वारा शास्त्र का अभ्यास किया जाता है उसे शिक्षा कहते हैं। इस अध्याय के प्रथम अनुवाक् में मित्र वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति एवं भगवान् विष्णु का स्मरण किया गया है। जिससे छहों देवता षडङ्गवेदाध्ययन को निर्विघ्न बनायें। हमारे लिए मित्रवरुण के साथ रहने वाले देवता विशेष अथवा भगवान् सूर्य कल्याणकारी हों। वरुण देव हम सबका कल्याण करें। पितरों के देवता अर्यमा हमारे लिए कल्याणप्रद हों। देवताओं के राजा इन्द्र हमारा कल्याण विधान करें। देवगुरु बृहस्पति हमारे लिए कल्याणकर हों तथा वराह, वामन, नृसिंह, श्रीराम, कृष्ण आदि अवतारों में जिन्होंने अनेक बार अपने चरण कमलों के अनेक विन्यास किये, अर्थात् जिन्होंने अपने अनेक अवतारों में निरावरण श्रीचरण कमलों से चल कर भारतभूमि को गौरवान्वित किया ऐसे भगवान् विष्णु हम सब वक्ता, श्रोताओं का कल्याण करें। ब्रह्म को नमस्कार, हे वायुदेवता आपको नमस्कार हो, क्योंकि आप प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध ब्रह्म हैं। मैं आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म मान कर अपने

हृदय में स्थिर करूँगा। यहाँ स्थिर अर्थ में 'वद' धातु का प्रयोग हुआ है। हे वायुदेव, मैं ऋत् अर्थात् यथार्थ बोलूँगा। मैं सत्य अर्थात् संतों के लिए हितैषी भाषण करूँगा। हे भगवन्! इसलिए मेरी रक्षा कीजिए और शास्त्र के वक्ता की रक्षा कीजिए। आर्त्त भाव से कहते हैं— रक्षा कीजिए, मेरी और रक्षा कीजिए, श्रुतियों के वक्ता की। त्रिविध ताप की शान्ति के लिए तीन बार शान्ति का उच्चारण किया गया॥ श्री॥

॥ इति शिक्षावल्ली का प्रथम अनुवाक सम्पन्न हुआ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

●

॥ अथ द्वितीय-अनुवाक॥

संगति– अब शिक्षा का प्रतिपाद्य कह रहे हैं।

शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– यह प्रतिज्ञावाक्य है। भगवती श्रुति कहती है कि अब हम शिक्षा का व्याख्यान करेंगे। जिसमें वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान ये छह शिक्षा के उपकरण होते हैं। अकारादि बावन अक्षर ही वर्ण हैं। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त स्वरित तथा प्रचयानुचय ये सात स्वर हैं। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत ये तीन मात्रायें हैं। बाह्यप्रयत्न और आभ्यन्तरप्रयत्न ये वैदिक उच्चारण के बल हैं। स्पृष्ट, ईषत्-स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत, तथा सम्वृत ये आभ्यन्तरयत्न के पाँच भेद हैं। विवार, संवार, स्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त स्वरित भेदों से बाह्ययत्न ग्यारह प्रकारों का होता है। सामवेद का स्तुति भाग, संतान वैदिकमन्त्रसमूह इस प्रकार शिक्षा अध्याय कहा गया। यहाँ 'शीक्षां' शब्द में अन्येषामपि दृश्यते (पा० अ० ६-३-१३६) सूत्र से शकारोत्तर इकार को दीर्घ आदेश हो गया॥ श्री॥

॥ इति शिक्षावल्ली का द्वितीय अनुवाक सम्पन्न हुआ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

●

।। अथ तृतीय-अनुवाक ।।

संगति– अब महासंहिता की व्याख्या के पहले मंगलाचरण करते हैं ।। श्री ।।

सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चसम्। अथातः सꣳहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः। पञ्चस्वधिकरणेषु। अधिलोकमधिज्यौतिष-मधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम्। ता महासꣳहिता इत्याचक्षते। अथा-धिलोकम्। पृथिवी पूर्वरूपम्। द्यौरुत्तररूपम्। आकाशः संधिः। वायुः संधानम्। इत्यधिलोकम् ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे भगवन्! हम गुरु-शिष्यों का यश साथ ही प्रसरित हो, हम दोनों के लिए ब्रह्मवर्चस् ब्रह्मणोचित तेज साथ ही प्रदान किया जाय। इसके अनन्तर हम अधिलोक, अधिज्यौतिष, अधिविद्य, अधिप्रज तथा अध्यात्म इन पाँच अधिकरणों में महासंहिता के रहस्य की व्याख्या करेंगे। इन पाँचों में अधि उपसर्ग के साथ सप्तमी विभक्ति के अर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ है। यहाँ लोक, ज्योति, विद्या, प्रजा तथा आत्मा में सन्धि का प्रकार कहा जा रहा है। दो वस्तुओं के जोड़ को सन्धि कहते हैं। इसमें चार उपकरण अनिवार्य होते हैं। पूर्वरूप, उत्तररूप, सन्धि और सन्धि कराने वाला तत्व। जैसे लोक में जब हम पृथ्वी की स्वर्ग से सन्धि करेंगे तब पृथ्वी पूर्वरूप स्वर्ग उत्तररूप, आकाश सन्धि और वायु संधान अर्थात् पृथ्वी और स्वर्ग को मिलाने वाला प्रेरक तत्व होगा ।। श्री ।।

संगति– अब ज्योति, विद्या, प्रजा और आत्मा में सन्धि का वर्णन करते हैं ।। श्री ।।

अथाधिज्यौतिषम्। अग्निः पूर्वरूपम्। आदित्य उत्तररूपम्। आपः सन्धिः। वैद्युतः सन्धानम्। इत्यधिज्यौतिषम्। विद्या सन्धिः। प्रवचनꣳ सन्धानम्। इत्यधिविद्यम् ।।२।।

अथाधिप्रजम्। माता पूर्वरूपम्। पितोत्तरूपम्। प्रजासन्धिः। प्रजननꣳ सन्धानम्। इत्यधिप्रजम् ।।३।।

अथाध्यात्मम्। अधरा हनुः पूर्वरूपम्। उत्तरा हनुरुत्तररूपम्।

वाक्सन्धिः । जिह्वा सन्धानम् । इत्यध्यात्मम् । इतीमा महासँ हिता य एवमेता महासँ हिता व्याख्याता वेद । सन्धीयते प्रजया पशुभिः । ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन सुवर्गेण लोकेन ।।४।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– ज्योति सन्धि में अग्नि पूर्वरूप है, सूर्य उत्तररूप है। जल ही इन दोनों की सन्धि है और बिजली जोड़ने वाला प्रेरक तत्व। इसी प्रकार विद्या की सन्धि में आचार्य पूर्वरूप है, शिष्य उत्तररूप है, विद्या संधि हैं और गुरु और शिष्य को मिलाने वाला तत्व है प्रवचन। प्रजा की संधि में माँ पूर्वरूप, पिता उत्तररूप, प्रजा अर्थात् सन्तान ही सन्धि है और प्रजनन की क्रिया ही जोड़ने वाला तत्व है।। श्री ।।

इसी प्रकार आत्मा की सन्धि में नीचे की दाढ़ अर्थात् अधर पूर्वरूप है ऊपर की दाढ़ उत्तररूप है। वाणी सन्धि है और जिह्वा दोनों को जोड़ने वाला तत्व है। इस प्रकार जो महासंहिता को समझ लेता है, वह दोनों लोकों की सन्धि कर लेता है और प्रजा धनधान्य से सम्पन्न हो जाता है।। श्री ।।

।। इति शिक्षावल्ली का तृतीय अनुवाक् सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

•

।। अथ चतुर्थ-अनुवाक ।।

संगति– अब चतुर्थ अनुवाक में ऋषि प्रणवरूप परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।। श्री ।।

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः । छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संबभूव । स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु । अमृतस्य देवधारणो भूयासम् । शरीरं मे विचर्षणम् । जिह्वा मे मधुमत्तमा । कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम् । ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः । श्रुतं मे गोपाय । आवहन्ती वितन्वाना ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जो छन्द अर्थात् वेद मन्त्रों में सबसे श्रेष्ठ है और जो सभी वेदमंत्रों से पूर्व ब्रह्माजी के मुख को निमित्त बना कर अमृत रूप परमात्मा से प्रकट हुए थे, वे सर्वरूप सभी मंत्रों के राजा प्रणव भगवान् मुझे मेधाशक्ति से युक्त करें। हे देव, जिससे मैं परमात्मारूप अमृत तथा भगवद्भजनामृत को धारण करने वाला हो सकूँ। मेरा शरीर विचर्षण

अर्थात् सदैव विष्णु के लिए ही चरणशील रहे, अर्थात् मैं अपने शरीर से सतत् परमेश्वर प्रीति के लिए कर्म करता रहूँ। मेरी जिह्वा मधुमत्तमा अतिमधुरवाणी से युक्त हो। मैं अपने दोनों कानों से प्रभु के दिव्य यश को सुनता ही रहूँ। हे प्रणव भगवान्! आप ब्रह्मरूप वेद एवं परब्रह्म परमात्मा के कोष हैं और आप मेधा अर्थात् शास्त्रधारणशक्ति से ढके हुए हैं। हे प्रणव देव! आप मेरे द्वारा अधीत शास्त्र तथा मेरे द्वारा श्रवण किये हुए वेदान्त की रक्षा कीजिए ।। श्री ।।

व्याख्या– पौराणिक मान्यता के अनुसार, सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के कण्ठ का भेदन करके 'ओम्, अथ' ये दो शब्द सर्वप्रथम प्रकट हुए थे। इसलिए प्रणव को सब मन्त्रों में श्रेष्ठ माना जाता है ।। श्री ।।

'भूयासम्'– यह आशीर्लिङ् उत्तमपुरूष एकवचन का प्रयोग है। यहाँ श्रेष्ठ मनोरथ करना ही आशीष हैं ।। श्री ।।

'भूरि विश्रुवम्'– यहाँ व्यत्यय से यासुट् का अभाव और 'वम्' का आदेश किया गया है ।। श्री ।।

'विचर्षणम्'– विष्णवे चरित इति विचषर्णम् अर्थात् मेरा शरीर विष्णु के लिए गतिशील रहे ।। श्री ।।

गोपाय– गुपू धातु से आय प्रत्यय करके लोट्लकार एकवचन में गोपाय शब्द सिद्ध होता है। तात्पर्य है— हे ओंकार से अभिन्न परमेश्वर आप ही मेरे शास्त्र की रक्षा कीजिए ।। श्री ।।

संगति– अब लक्ष्मी की कामना करने वाले व्यक्ति के लिए हवनीय मन्त्र का निर्देश करते हैं ।। श्री ।।

कुर्वाणा चीरमात्मनः। वासा ँ्सि मम गावश्च। अन्नपाने च सर्वदा। ततो मे श्रियमावह। लोमशां पशुभिः सह स्वाहा। आमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। विमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। प्रमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। दमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ।।२।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब दो मन्त्रों से श्री एवं ब्रह्मचारियों की प्राप्ति के लिए होममंत्रों का निर्देश करते हैं। 'गाव:' शब्द व्यत्यय से द्वितीया बहुवचनान्त अर्थ में जस् विभक्त्यन्त प्रयुक्त हुआ है। आमायन्तु, विमायन्तु, प्रमायन्तु इन तीनों शब्दों में 'व्यवहिताश्च' इस पाणिनीयसूत्र से

'मा' शब्द के व्यवधान में क्रम से आङ्, वि, प्र उपसर्गों का पहले प्रयोग हुआ है। ऋषि प्रार्थना करते हैं कि— जो मुझ साधक के लिए वस्त्रभूषणादि की व्यवस्था करती हैं, गौ आदि श्रेष्ठ पशुओं का विस्तार करती हैं एवं जो सदैव भोजन आदि का उत्पादन करती हैं ऐसी श्री को मेरे लिए उपस्थित करो। हे परमेश्वर! चारों ओर से मेरे यहाँ ब्रह्मचारी आयें। हे भगवान्! मेरे यहाँ विशिष्ट ब्रह्मचारी आयें। हे प्रभो! मेरे यहाँ प्रकृष्ट ब्रह्मचारी आयें। हे परमात्मन्! मेरे ब्रह्मचारी इन्द्रियों का दमन कर सकें और मरे ब्रह्मचारी मन का शमन कर सकें॥ श्री॥

संगति– फिर यश और धन प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं॥ श्री॥

यशो जनेऽसानि स्वाहा। श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा। तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा। स मा भग प्रविश स्वाहा। तस्मिन् सहस्रशाखे निभगाहं त्वयि मृजे स्वाहा। यथापः प्रवता यन्ति यथा मासा अहर्जरम्। एवं मां ब्रह्मचारिणो धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा। प्रतिवेशोऽसि प्र मा पाहि प्र मा पद्यस्व वितन्वाना शमायन्तु ब्रह्मचारिणः॥३॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– यहाँ यशशब्द यशस्वी वाचक है और 'वस्यसः' शब्द में व्यत्यय से यकार का लोप हुआ है। भग शब्द भगवान् के अर्थ में प्रयुक्त है। 'प्रतिवेश' शब्द का विश्राम स्थान अर्थ है। संवत्सर अर्थात् वर्ष को अहर्जर कहते हैं। ऋषि कहते हैं— हे प्रणव रूप परमात्मा! मैं लोगों में यशस्वी बनूँ, मैं धनवानों में सबसे श्रेष्ठ बनूँ, हे भगवान्! मैं आप में प्रवेश करूँ और आप मुझमें प्रवेश करें, हे परमेश्वर स्वरूप प्रणव! सहस्त्रों वेदशाखाओं वाले आप में मैं अपने पापों का शोधन करूँ। हे विश्व के भरण-पोषणकर्त्ता ओंकाररूप परमेश्वर! जिस प्रकार ऊँचे स्थान से जल नीचे स्थान में वेग से जाता है, जिस प्रकार चैत्र आदि महीने एक-एक करके सम्वत्सर को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार सभी दिशाओं से ब्रह्मचारी हमारे यहाँ पढ़ने के लिए आयें। हे प्रणव! तुम सारे संसार के विश्राम स्थान हो। तुम अपनी दिव्य आभा से मुझे प्रकाशित करो। हे प्रणव परमेश्वर! तुम अपने सेवक के रूप में मुझे स्वीकार लो॥ श्री॥

॥ इति शिक्षावल्ली का चतुर्थ अनुवाक सम्पन्न हुआ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

●

।। अथ पञ्चम-अनुवाक ।।

संगति– अब पञ्चम-अनुवाक में गायत्री की व्याहृतियों पर विचार किया जा रहा है। क्योंकि जब आचार्य ब्रह्मचारियों को बुलाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं तो ब्रह्मचारियों के लिए सबसे अधिक कल्याणकर प्राणायाम पर विचार करना होगा और प्राणायाम बिना मन्त्र के किया नहीं जाता। इसलिए प्राणायाम में प्रथम प्रणव उच्चारण के साथ-साथ सात व्याहृतियाँ, मध्य में चौबीस अक्षरों वाली त्रिपदा गायत्री, अनन्तर अष्टाक्षर शिरोभाग फिर ब्रह्म का स्मरण, अन्त में तीन व्यवहृतियों में प्रणव का उच्चारण किया जाता है। इस प्रकार उनसठ अक्षरों का प्राणायाम गायत्री मंत्र होता है। पद्मासन पर बैठ कर, दाहिने हाथ में अँगूठे से नासिका के दाहिने छिद्र को बन्द करके, नासिका के बायें छिद्र से प्राणायाम मन्त्र मन में पढ़ते हुए, धीरे-धीरे श्वांस को खींचने को पूरक प्राणायाम कहते हैं। फिर हाथ के दाहिने अंगूठे से नासिका के दाहिने छिद्र को बन्द करके प्राणायाम मन्त्र के उच्चारण काल तक खींची हुई श्वांस को रोके रहने को कुम्भक प्राणायाम कहते हैं। पुनः रोकी हुई श्वांस को नासिका के दाहिने छिद्र से प्राणायाम मन्त्र के उच्चारण काल तक निकालने को रेचक प्राणायाम कहते हैं।। श्री ।।

अतः इन सातों व्याहृतियों में भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महोलोक, जनोलोक, तपोलोक, सत्यलोक इन सात लोकों का संकेत कर रहे हैं। इनमें चौथी महोव्याहृति का यहाँ विशेष विचार किया जा रहा है।। श्री ।।

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः। तासामु ह स्मैतां चतुर्थीं माहाचमस्यः प्रवेदयते मह इति। तद्ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः। भूरिति वा अयं लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षम्। सुवरित्यसौ लोकः ।।१।।

मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते। भूरिति वा अग्निः। भुव इति वायुः। सुवरित्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतीꣳषि महीयन्ते। भूरिति वा ऋचः। भुव इति सामानि सुवरिति यजूꣳषि ।।२।।

मह इति ब्रह्म। ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते। भूरिति वै प्राणः। भुव इत्यपानः। सुवरिति व्यानः। मह इत्यन्नम्। अन्नेन वाव

सर्वे प्राणा महीयन्ते। ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा। चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः। ता यो वेद। स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवा बलिभावहन्ति ।।३।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– भूर्भूवः स्वः इन तीन व्याहृतियों के साथ चतुर्थ जो महोव्याहृति है, उसका महाचमष्य ऋषि ने साक्षात्कार किया। जिसमें भूर्लोक, 'भू' पृथ्वी, 'भुवः' अन्तरिक्ष, 'स्वः' स्वर्गलोक तथा 'महः' सूर्य हैं। इन्हीं आदित्य के द्वारा सम्पूर्ण लोक सेवित होते हैं। ज्योतिपक्ष में 'भूर्' अग्नि, 'भुवः' वायु, 'स्वः' सूर्य और 'महः' चन्द्रमा है। उनके द्वारा सभी नक्षत्र प्रकाशित हो रहे हैं। वेदपक्ष में 'भूर्' ऋक्, 'भुवः' साम, 'स्वः' यजु और 'महः' ब्रह्म है। महः के द्वारा सारे वेद प्रकाशित हो रहे हैं। प्राणपक्ष में 'भूः' प्राण, 'भुवः' अपान, 'स्वः' व्यान और 'महः' अन्न है। उसके द्वारा सभी प्राण प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार जो चारों व्याहृतियों को जानता है, वह ब्रह्म को जानता है। सभी देवता उसे उपहार देते हैं।। श्री ।।

।। इति शिक्षावल्ली का पञ्चम अनुवाक् सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ षष्ठ-अनुवाक ।।

संगति– अब प्राचीन योग्याचार्य ब्रह्म उपासना का निर्देश करते हैं।। श्री ।।

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः। अमृतो हिरण्मयः। अन्तरेण तालुके। य एष स्तन इवावलम्बते। सेन्द्रयोनिः। यत्रासौ केशान्तो विवर्तते। व्यापोह्य शीर्षकपाले। भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति। भुव इति वायौ ।।१।।

सुवरित्यादित्ये। मह इति ब्रह्मणि। आप्नोति स्वराज्यम्। आप्नोति मनसस्पतिम्। वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः। श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः। एतत्ततो भवति। आकाशशरीरं ब्रह्म। सत्यात्म प्राणारामं मन आनन्दम्। शान्तिसमृद्धममृतम्। इति प्राचीनयोग्योपास्व ।।२।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– प्राचीन योग्यनामक ब्राह्मणवटु से आचार्य कहते हैं— हे ब्रह्मचारी। हमारे हृदय के अन्दर यह जो आकाश है, उसी में स्वर्ण के समान ज्योतिर्मय अथवा स्वर्ण के समान पीताम्बर धारण किये

हुए, मन के समान सूक्ष्म, मन के समान वेगशाली तथा मन के समान आकार वाले अमृतस्वरूप परमात्मा हमारे मनोमन्दिर में विराजते हैं। हे प्राचीनयोग्य! हमारे दोनों तालुओं को छोड़ कर जो तन के समान लटकती हुई हड्डी है, नाभि से लेकर उस हड्डी तक भगवान् का केशान्त शरीर विराजता है। वे ही भगवान् 'भू' रूप से अग्नि में, 'भुव:' रूप से वायु में, 'स्व:' रूप से आदित्य में और मह: रूप से ब्रह्मरूप वेद में प्रतिष्ठित हैं। जो इस प्रकार जानता है वह स्वराज्य प्राप्त कर लेता है। वह मन के पति चन्द्रमा को प्राप्त करके, 'चक्षु:' के पति सूर्य, श्रोत्र के पति दिशा की भावना से भाषित होकर अमृत हो जाता है। हे प्राचीनयोग्य! ब्रह्म कभी निराकार नहीं होता। ब्रह्म का शरीर तो आकाश के समान नीला, व्यापक, निर्लेप और नित्य है। जैसे आकाश में नक्षत्रमण्डल विराजते हैं उसी पर भगवान् के श्रीविग्रह पर आभूषण, जैसे आकाश में मेघमालायें उसी प्रकार भगवान् के कुटिल-कुटिल मेचक-मेचक केशकलाप, जिस प्रकार आकाश में प्रात:कालीन सूर्य किरणें उसी प्रकार भगवान् के श्री विग्रह पर दामिनिद्युतिविडम्वक पीताम्बर। यदि कहें 'आकशं शरीरं यस्य' इस प्रकार विग्रह करके यह अर्थ किया जा सकता है कि— भगवान् का आकाश ही शरीर है और आकाश निराकार होता है। इस दृष्टि से परमेश्वर की निराकारता सिद्ध हो जायेगी। तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि शरीरशब्द का प्रयोग करने से ही निराकारता का निषेध हो जाता है। शरीर कभी निराकार हो ही नहीं सकता अत: आकाशशरीर में उपमित बहुव्रीहि ही करना पड़ेगा। इसीलिए भगवान् वेदव्यास ने परमेश्वर को 'गगनसदृशं' कहा। जिस प्रकार आकश से मेघमाला जल का वर्षण करती है उसी प्रकार भगवान् के श्रीविग्रह से कृपाकादम्बिनी भक्तजन पर कृपाजल का वर्षण करती है। भगवान् सत्य आत्मा और प्राण के आराम स्थान हैं। अथवा सत्य ही जिनकी आत्मा है, ऐसे महापुरुषों के कारण भगवान् जन्मते हैं। भगवान् से ही मन को आनन्द मिलता है। भगवान् शान्ति से समृद्ध हैं, और भगवान् ही अमृत हैं। हे प्राचीनयोग्य! ऐसे आकाश के समान व्यापक, श्यामलशरीर वाले सत्यआत्मा, प्राण का रमण कराने वाले, मन को आनन्द देने वाले, परमशान्ति से समृद्ध, अमृतस्वरूप, परब्रह्म परमात्मा श्रीराम की उपासना करो॥ श्री॥

व्याख्या– इस प्रसंग में भगवान् को पाँच विशेषण दिये गये हैं। ये पांचो क्रम से परमात्मा के पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी तथा अर्चा इन पाँचो अवतारों को व्याख्यायित करते हैं। जैसे– जो सभी कार्य-कारणों से

परे तथा इन्द्रिय, विषय, मन, बुद्धि आत्मा और योगमाया से भी परे हैं, वे ही दिव्य साकेत वैकुण्ठ गोलोक में विराजने वाले परमात्मा आकाश के समान श्यामल श्रीविग्रह से युक्त हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चार रूपों में व्यूहरूप से विराजमान परमेश्वर में ही सत्य, आत्मा और प्राण का विश्राम होता है। श्रीराम-कृष्ण आदि रूपों में वर्तमान विभव भगवान् ही सभी के मनों को आनन्दित करते हैं। 'मनांसि आनन्दयति इति मन आनन्दम्' इन्हीं श्रीराम को देख कर योगिराज जनक कहते हैं—

इनहि विलोकत अति अनुरागा। बरवस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा।।

—(मानस १/२१६/५)

सबके शरीर में शान्ति से रहने के कारण अन्तर्यामी प्रभु को ही शान्त समृद्ध कहा गया है। क्योंकि वे हृदय में रहने पर भी साक्षी बने रहते हैं, न पापी का विरोध करते हैं न पुण्यात्मा का समर्थन।। श्री।।

यद्यपि सम नहिं राग न रोसू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोसू।।

—(मानस २/२१९/४)

अर्चा अवतार शालिग्राम, श्रीराघव गोपाल आदि रूपों में सेवक की इच्छानुसार काल की सीमा के बिना ही विराजते रहते हैं। इसलिए उन्हें अमृत कहा जाता है। अर्चा अवतार भगवान् अमृत स्वरूप हैं, इसीलिए भगवती मीरा द्वारा श्रीगिरिधर गोपाल को अर्पित विष का प्याला बन गया अमृत का चषक। मीरा जी स्वयं कहती हैं—

जहर का प्याला राणा ने भेजा। पीवत मीरा हाँसी रे।।

अहो मीरा के चरित में ही अर्चा अवतार का अमृतत्व ऐतिहासिक दृष्टि में अक्षरशः प्रमाणित हुआ। यहाँ देखिए एक तालिका—

कर में प्यालो देख मीरा हो अधीर नाची,
नाच उठी मुदित मन मूर्ति मुण्डमाल की।।
नाच उठी दासी निज जीवन सुफल जान,
नाच उठी हरषित छाया महाकाल की।।
नाची दिव्यांगना हुलास भरी मानस में,
नाच उठी कुमति कराल नरपाल की।।
नैनन के बीच दोऊ पुतरी हू नाच उठी,
पुतरी हू नाच उठी मूरति गोपाल की।।

इस प्रसंग को श्रीरामकथा के फलक पर भी बहुत मनोहर रूप में देखिए–

आकाशशरीर ब्रह्म बाल्यकाल लसे प्रभु,
सत्य आत्म प्राणराम मिथिला भवन में।
कोटि-कोटि मुनिजन मन को चुराये राम,
बने मन आनन्द आनन्दकन्द वन में।।
शान्त समृद्ध बने विभीषण अभयदाता,
अमृत जियाये कपि भालु लंका रण में।
राज तैत्तिरीय के विशेषण सकल आज,
रामभद्राचार्य प्रभु जानकी रमण में।।

।। इति शिक्षावल्ली का षष्ठ अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

•

।। अथ सप्तम-अनुवाक ।

संगति– अब छः पाङ्क्त तथा पाँच-पाँच वस्तुओं के छह समूहों का निर्देश करते हैं ।। श्री ।।

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिशाः। अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि। आप ओषधयो। वनस्पतय आकाश आत्मा। इत्यधिभूतम्। अथाध्यात्मम्। प्राणो व्यानोऽपान उदानः समानः। चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् त्वक्। चर्म माँ्स ँ् स्नावास्थिमज्जा। एतदधिविधाय ऋषिरवोचत्। पाङ्क्तं वा इदँ् सर्वम्। पाङ्क्तेनैव पाङ्क्तँ् स्पृणोतीति ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– ये पाङ्क्त दो प्रकार के हैं। अधिभूत और अध्यात्म। भूतों में भी पाँच-पाँच वस्तुओं के तीन समूह हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, दिशा और अवान्तर दिशा यह पहला पाङ्क्त है। अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र ये द्वितीय पाङ्क्त हैं। जल, ओषधि, वनस्पति (वृक्ष), आकाश और अहंकार ये तीन आधिभौतिक पाङ्क्त हैं। अब आत्मा में तीन पाङ्क्त कहे जाते हैं— प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान यह प्रथम पाङ्क्त हैं। चक्षु, श्रोत्र (कान), मन, वाणी और त्वक् यह द्वितीय

पाङ्क्त हैं। यहाँ त्वक् शब्द स्पर्श इन्द्रिय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। चर्म, मांस, अस्थि, स्नायु और मज्जा यह तृतीय आध्यात्मिक पाङ्क्त है। इस पर विचार कर ऋषि ने कहा— ये सब कुछ पांक्त अर्थात् पंचभूतमय हैं। अर्थात् पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत, पंच प्राण, पांच आहुतियाँ, पंच देवोपासना, पंच लोकपाल, पंचोपचारपूजन इत्यादि अनेक पाँच-पाँच वस्तुओं से युक्त है। यह जीवात्मा पाङ्त से अर्थात् पुंड्र, मुद्रा, माला, मन्त्र एवं नाम इन पाँच संस्कारों से पंचोपचार मानसिक पूजा से पंचरूपात्मक, परव्यूह, विभव, अन्तर्यामी, अर्चारूप परमात्मा को अथवा बाललीला विवाहलीला, वनलीला, रणलीला तथा राज्यलीला इन पंचलीलाओं में निपुण पंचदेवात्मक परब्रह्म श्रीराम को प्रसन्न कर लेता है ।। श्री ।।

।। इति शिक्षावल्ली का अष्टम अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

•

।। अथ नवम-अनुवाक ।।

संगति– अब ऋतादि के साथ स्वाध्याय और प्रवचन की अनिवार्यता कहते हैं। ऋत आदि भले एक-एक रहे किन्तु इन सबके साथ स्वाध्याय और प्रवचन अनिवार्य है स्वाध्याय का अर्थ है वेद अथवा अपनी शाखा में प्राप्त वेद का अध्ययन। वेद का अध्यापन ही प्रवचन है ।। श्री ।।

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं स्वाध्यायप्रवचने च।
तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च।
प्रजनश्च स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः। तप इति तपोनित्यः पौरुषिष्टिः।
स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः। तद्धि तपस्तद्धि तपः ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– ऋत, सत्य, तप, दम, शम, अग्नि, अग्निहोत्र, अतिथि, दाम्पत्यजीवन, संतति, संतान की उत्पत्ति, प्रजाति इन

सबके साथ स्वाध्याय और प्रवचन अनिवार्य है। सत्य बोलने वाले राथीतर ने सत्यभाषण को ही अनिवार्य बताया और निरन्तर तपस्या करने वाले पौरुषिष्टि ने तप को अनिवार्य कहा किन्तु मुद्गलगोत्रीय महर्षि नाक ने स्वाध्याय और प्रवचन को ही विधेय बताया क्योंकि वही तप है॥ श्री॥

॥ इति शिक्षावल्ली का नवम अनुवाक सम्पन्न हुआ ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

●

॥ अथ दशम-अनुवाक ॥

संगति– दशवें अनुवाक् में स्वाध्याय का महत्त्व वर्णन करने की श्रुति प्रेरणा दे रही है॥ श्री॥

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि। द्रविण ँ् सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः। इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम्॥१॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– भगवती के माध्यम से परमेश्वर कह रहे हैं— मैं इस वृक्ष के समान क्षणभङ्गुर शरीर प्रेरक हूँ। मेरी कीर्ति पर्वत के शिखर के समान निश्चल है एवं अन्नदाता सूर्य के समान ऊपर से पवित्र हूँ तथा तेजोमय अमृत और धन भी मैं हूँ। इस प्रकार महर्षि त्रिशंकु को परमात्मा द्वारा वेदानुवचन कराया गया था॥ श्री॥

व्याख्या– रीयते इति रेरिवा यहाँ लिट् के अर्थ में क्वसु प्रत्यय और द्वित्व हुआ है, गुण करके रेरिवाशब्द सिद्ध किया गया है। संस्कृत में 'वाजि' शब्द अन्न का पर्यायवाची है और सूर्य नारायण को भी 'वाजि' कहते हैं॥ श्री॥

॥ इति शिक्षावल्ली का दशम अनुवाक सम्पन्न हुआ ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

●

।। अथ एकादश-अनुवाक ।।

संगति– अब भगवति श्रुति समावर्तन विधान की व्याख्या करती हैं। वैदिक वाङ्मय में त्रैवर्णिक सनातन धर्मी के लिए सोलह संस्कार कहे गये हैं। गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोनयन, जातकर्म, नामकरण, बहिर्निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, लिप्यारम्भ, व्रतबन्ध, वेदारम्भ, समावर्तन, पाणिग्रहण, अग्निहोत्र, अन्त्येष्टि। इन में समावर्तन तेरहवां संस्कार है। गुरुकुल में वेदाध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी को सम्बोधित करके आचार्य जो उपदेश करते हैं, उस उपदेश के अनन्तर गृहस्थ आश्रम के लिए वटु को जो अनुज्ञा दी जाती है, उसे समावर्तन संस्कार कहते हैं। उसी समावर्तन संस्कार की इस अनुवाक में व्याख्या की जा रही है।

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ।।१।।

देव पितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकँ सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि ।।२।।

ये के चास्मच्छ्रेयाँसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ।।३।।

ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु। ये

तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम् ।।४।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– भली-भाँति वेद पढ़ा कर आचार्य गृहस्थ आश्रम में जाने के लिए तत्पर अन्तेवासी को अनुशासित करते हैं। हे ब्रह्मचारी! अब तुम हमारे यहाँ से गृहस्थ आश्रम में जा रहे हो। वहाँ सत्य बोलना, धर्म का आचरण करना, कभी-भी स्वाध्याय से प्रमाद मत करना। आचार्य को अपने अर्जित धन का दशांश देकर सवर्गभार्या के साथ विवाह करके प्रजातन्तु का विच्छेद मत करना अर्थात् सुयोग्य धार्मिक सन्तान उत्पन्न करना चाहिए। श्रेष्ठ कर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिए। धन के लिए कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए। अर्थात् धन के लोभ में शास्त्रविरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए। स्वाध्याय तथा प्रवचन से अर्थात् वेदपाठ और वेदाध्यापन से भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। अर्थात् समय मिलने पर पढ़ते रहना चाहिए, और पढ़ाते रहना चाहिए।। श्री ।।

देवताओं तथा पितृसम्बन्धी कार्यों से भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। माता को देवता मानो। पिता को देवता मानो। आचार्य में देव बुद्धि रखो। अतिथि अर्थात् जिसके आने की कोई तिथि या दिन निश्चित नहीं हो उसको देवता मानो। हे बालक! हम भगवान् नहीं हैं, एक जीव हैं। जीवों से त्रुटियाँ होती रहती हैं। हमारे जो निन्दा रहित सुन्दर कर्म हों उन्हीं का सेवन करना, दूसरों का नहीं। और हमारे जो सुन्दर आचरण हों उन्हीं को जीवन में उतारना। दूसरों को नहीं।। श्री ।।

हे वत्स! जो हमसे श्रेष्ठ ब्राह्मण हो उन्हें श्रेष्ठ आसन से सम्मानित करना। उन ब्राह्मणों को आस्तिक बुद्धि से दक्षिणा देना। न श्रद्धा हो तो भी दक्षिणा देना। धन हो तो भी देना न हो तो भी देना। लज्जा से, भय से, ज्ञान पूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक उन ब्राह्मणों को अवश्य दक्षिणा देना। यदि तुमको कर्म या चरित्र के सम्बन्ध में कोई संशय हो तो जो तुम्हारे निकट कुशल, श्रेष्ठ उपदेश देने में निपुण, निर्दोष और निर्लोभ ब्राह्मण

रहते हों, वे जैसा वाचन करें वैसा ही आचरण करना। यही आदेश है, यही उपदेश है, यही गोपनीय वैदिक उपनिषद् का ज्ञान है। धीरे-धीरे इसे जीवन में उतारो। क्योंकि यही जीवन में उतारना चाहिए ॥ श्री ॥

।। इति शिक्षावल्ली का एकादश अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ द्वादश-अनुवाक ।।

संगति– अब शिक्षा अध्याय को विश्राम देती हुई भगवती श्रुति भूतकाल की भंगिमा से फिर वही शान्तिपाठ पढ़ती हैं ॥ श्री ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥१॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति तथा अनन्त चरण विक्षेप करने वाले भगवान् विष्णु, ये पाँचों देवता हमारा कल्याण करें। ब्रह्म को नमस्कार है। वायु देवता! आपको नमस्कार। आप प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। मैंने आपको प्रत्यक्ष ब्रह्म रूप में स्थिर किया। मैंने ऋत भाषण किया, मैंने यथार्थ बोला, आपने मेरी रक्षा की, आपने मेरे वक्ता की रक्षा की, आपने मुझे और वक्ता को संकट से बचाया। प्राणिमात्र के तीनों ताप की शान्ति हो, शान्ति हो, शान्ति हो ॥ श्री ॥

।। इति तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली पर
श्रीराघवकृपाभाष्य सम्पन्न हुआ ।। श्री ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ ब्रह्मानन्द वल्ली ।।

।। शान्तिपाठ ।।

ॐ शन्नो मित्र, शं वरूणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्दरो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरूरूक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। अवीद्वक्तारम्।।१।।

ॐ सह नाववतु। सह नौ भनुक्तु। सहवीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

संगति– ब्रह्मानन्द वल्ली में ॐ शन्नो मित्र एवं ॐ सह नाववतु। ये दो शान्तिपाठ हैं। पूर्वमन्त्र की शिक्षाध्याय में ही व्याख्या कर दी गयी है, और 'सह नाववतु' की कठोपनिषद् में व्याख्या किये जाने पर भी फिर यहाँ व्याख्या की जा रही है। ऋषि भगवान् से प्रार्थना करते हैं— यहाँ नौ शब्द का तीन बार प्रयोग हुआ है। दो बार द्वितीया द्विवचन के अर्थ में तथा एक बार षष्ठी द्विवचन के अर्थ में। 'ओम्' इसका कर्त्ता है। जिसका अर्थ है— सबके रक्षण करता परमेश्वर। आचार्य प्रार्थना करते हुए कहते हैं— सबके पालन-पोषण कर्त्ता परमेश्वर हम दोनों (गुरु-शिष्यों) को साथ ही विपत्तियों से बचावें। वे भक्तभयहारी भगवान् हम दोनों (गुरु-शिष्य) को साथ ही अपनी कृपासुधा धारा से पालें। हम दोनों आचार्य-शिष्य साथ ही साथ शास्त्र में पराक्रम प्रस्तुत करें। हम दोनों (गुरु-शिष्य) का वैदिक अध्ययन तेजस्वी हो। हम दोनों (गुरु-शिष्य) परस्पर विद्वेष न करें।। श्री ।।

व्याख्या– यहाँ 'भुनक्तु' शब्द की व्याख्या में आदि शंकराचार्य जी ने पालन अर्थ न करके, 'ब्रह्म हमें ब्रह्म सुख का भोजन कराये' ऐसा अर्थ किया है, परन्तु उनकी यह व्याख्या अत्यन्त शास्त्रविरुद्ध है। क्योंकि भुज् धातु पालन अर्थ में परस्मैपदी और अध्यवहार अर्थात् भोजन अर्थ में आत्मनेपदी होता है 'भुजपालनाभ्यवहारयोः' (पा०अ०- १४५४) स्वयं पाणिनि पालन से भिन्न अर्थात् भोजन अर्थ में भुज् धातु से आत्मनेपदीय प्रत्यय का विधान करते हैं। भुजोऽनवने (पा०अ०- १/३/६६) विधिवसात् 'भुनक्तु' शब्द भुज् धातु के लोट् लकार के प्रथमपुरुष एकवचन में परस्मैपद तिप्प्रत्यय

इकार का उकार करके निष्पन्न हुआ। इससे इसका पालन अर्थ ही सिद्ध होगा न कि भोजन। शंकराचार्य ने पालयतु के स्थान पर भोजयतु अर्थ किया होगा और किस स्वार्थ से अपने ही द्वारा भगवान् शब्द से सम्बोधित किये जाने वाले महर्षि पाणिनि के शब्दानुशासन का उल्लंघन किया और किस आपत्ति के निवारण हेतु भुज धातु में अन्तर्भावित ण्यर्थ की कल्पना की। यदि कहें कि— अद्वैतवाद की रक्षा के लिए तो यह कहना उचित नहीं है। क्योंकि 'नौ ब्रह्म भोजयतु' व्याख्या करने पर भी उनके अद्वैतवाद की रक्षा नहीं हो सकती। क्योंकि वहाँ भोजन कराने वाले तथा भोजन करने वाले और भोजनीय पदार्थ ये तीन पृथक् तत्व मानने पड़ेंगे। क्योंकि एक ही व्यक्ति में एक ही साथ भोजन कराना, भोजन करना और भोज्य बनना ये तीनों धर्म नहीं समन्वित हो सकते। अत: 'भक्षितेऽपि लसुने न शान्तो व्याधि:' लहसुन भी खाया और व्याधि भी नहीं समाप्त हुआ। इसी लोकोक्ति के अनुसार व्याकरण की मर्यादा का उल्लंघन करके अधर्म भी किया और अद्वैतवाद की रक्षा भी नहीं हो सकी। इसलिए यहाँ हमारी ही व्याख्या उपयुक्त है।। श्री।।

इस मन्त्र को कुछ लोग भोजन करते समय पढ़ते हैं। इसमें उनका क्या आधार है, यह तो वे ही जाने क्योंकि इस मंत्र में भोजन शब्द का कहीं उल्लेख नहीं है फिर भी अकरणात् मन्दकरणं श्रेय:' न करने से कुछ करना अच्छा है। 'उपवास से भला पतोहू का जूठन' लोकोक्ति की दृष्टि से कोई विशेष आपत्ति नहीं है। जबकि भोजन काल में 'सह नाववतु' का पाठ उचित नहीं है। इसके बदले 'नाभ्या आसीत् .... इत्यादि शुक्ल यजुर्वेद (३१/१३) का पाठ उचित है।। श्री।।

।। अथ प्रथम-अनुवाक ।।

संगति– इस ब्रह्मानन्दवल्ली में ब्रह्म का स्वरूपलक्षण और इस सृष्टि के अभिन्ननिमित्तोपादानकारणरूप में ब्रह्म का वर्णन किया जा रहा है।। श्री।।

ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश: सम्भूत:। आकाशाद्वायु:। वायोरग्नि:। अग्नेराप:। अद्भ्य: पृथिवी। पृथिव्या

ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्न-रसमयः। तस्येदमेव शिरः। अयं दक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरपक्षः। अयमात्मा। इदं पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येषः श्लोको भवति॥१॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– 'ओम्' यह परमेश्वर का स्मरण है। पर ब्रह्म परमात्मा को जानने वाला तथा परमेश्वर को प्राप्त करने वाला एवं श्रुत्यर्थ से परमात्मा का विचार करने वाला साधक अन्ततोगत्वा परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है तथा परमेश्वर के सर्वश्रेष्ठ साकेतलोक को प्राप्त कर लेता है॥ श्री॥

उसी ब्रह्म की महिमा गाती हुई भगवती श्रुति द्वारा एक ऋचा भी कही गयी है। ब्रह्म सत्य अर्थात् सत् स्वरूप हैं, वह ज्ञान स्वरूप और ज्ञान का अधिकरण हैं। उनका कोई अन्त नहीं है। इस प्रकार सभी के हृदयरूप गुफा में अन्तर्यामीरूप से विराजमान तथा परमव्योम साकेतलोक में श्रीसीताजी के सहित प्रतिष्ठित श्रीराम ब्रह्म को अपना सेव्य समझ कर जो उनकी उपासना करता है, वह सर्वज्ञ प्रभु श्रीराम के साथ साकेत में विराजता हुआ प्रभु के प्रसादरूप सभी कमनीय पदार्थों का सेवन करता है। उन्हीं श्रीसाकेतभूषण राम से अभिन्न अयोध्याधिपति श्रीरामजी से ही जीव का प्रथमभोग्य शब्द गुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से शब्द, स्पर्श, गुण वाला वायु, वायु से शब्द, स्पर्श, रूप गुण वाला अग्नि, अग्नि से शब्द, स्पर्श, रूप, रस गुण वाला जल तथा जल से शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध वाली पृथ्वी, पृथ्वी से सभी ओषधियाँ, ओषधियों से अन्न और अन्न से शरीरावच्छिन्न यह पुरुष उत्पन्न हुआ। यह पुरुष अन्नमय और रसमय है। यह एक पक्षी के समान है। प्रत्यक्ष दिखने वाला सिर ही इस जीवात्मा रूप पक्षी का सिर है। यह दाहिना हाथ ही इसका दाहिना पंखा है। यह बांया हाथ ही इसका बांया पंखा है। शरीर का मध्य भाग ही जीवात्म पक्षी का शरीर है। पिछला भाग ही इसकी पूँछ हैं। दोनों चरण ही इसके चरण हैं॥ श्री॥

व्याख्या– श्रुति द्वारा कही हुई ऋचा में ब्रह्म का स्वरूपलक्षण किया गया है। सत् चित् आनन्द ही ब्रह्म का स्वरूप है। जो क्रमशः सत्यम्, ज्ञानम्, और अनन्तम् से कहा गया है। 'सदेव सत्यम्' सत्य ही सत्य है।

यह स्वार्थ में यत् प्रत्यय अथवा शाखा आदि गण में पठित होने से प्रथमान्त सत् शब्द से स्वार्थ में 'य' प्रत्यय हुआ। यदि कहें कि स्वार्थ प्रत्यय में क्या प्रमाण है तो इसका उत्तर है कि वेदमन्त्र ही इसका परम प्रमाण हैं। छान्दोग्य उपनिषद् के छठे उध्याय में यह कहा गया है कि— हे सोम्य। सृष्टि के पहले एक मात्र अद्वितीय यह सत् ही था। 'सदेव सोम्य' सत् एव इस विग्रह में— 'शाखा दिभ्यो यः' सूत्र से यो प्रत्यय हुआ अथवा 'सद्भो हितं सत्यम्' जो सन्तों के लिए हितैषी हो उसे सत्य कहते हैं। इस विग्रह में 'गवादिभ्यो यत्' सूत्र से यत् प्रत्यय करके सत्यशब्द निष्पन्न किया जाता है। यहाँ 'भ' संज्ञा से पद संज्ञा का बाध होने के कारण 'जस्त्व' नहीं होता। 'ज्ञायते इति ज्ञानम्' ज्ञान के विषय को ज्ञान कहते हैं। प्रभु समस्त ज्ञान के विषय हैं। यहाँ अवबोधनात्मक 'ज्ञा' धातु से 'करण' में ल्युट् प्रत्यय हुआ। ज्ञायते अनेन इति ज्ञानम्। ज्ञायते अस्मिन् इति ज्ञानम्। जिसके द्वारा और जिसके साक्षित्व में ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उसे ज्ञान कहते हैं। इन दोनों विग्रहों में ''करणाधिकरणयोश्च' (पा०अ०- ३/३/११७) सूत्र से ल्युट् प्रत्यय हुआ। अथवा ज्ञायते इति ज्ञानम्। इस भाव की व्युत्पत्ति में ल्युट् च (पा०अ०- ३/३/११५) सूत्र से ल्युट् प्रत्यय और 'ज्ञानम् नित्यम् अस्ति अस्मिन् इति ज्ञानम्' इस विग्रह में नित्ययोग में मत्वर्थीय अच् प्रत्यय हुआ। अर्थात् ब्रह्म ज्ञान का स्वरूप तथा ज्ञान का अधिकरण दोनों है। यही उनका चित् स्वरूप है। जिसका अन्त नहीं होता वही अनन्त है। अनन्त ही आनन्द का स्वरूप है। क्योंकि शास्त्र में भूमा को ही सुख माना है। 'यो वै भूमा तत्सुखम्'। इसीलिए गोस्वामी जी ने ब्रह्म की परिभाषा करते हुए कहा—

जो आनन्द सिन्धु सुख रासी। ईश्वर ते त्रैलोक सुपासी।।
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा।।

—(मानस १/१९७/५,६)

।। इति ब्रह्मानन्दवल्ली का प्रथम अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ द्वितीय-अनुवाक ।।

संगति– अब द्वितीय अनुवाक में प्राणपुरुष का वर्णन करते हैं।। श्री ।।

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीँ् श्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्ततः अन्नँ् हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते। अन्नँ् हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। अन्नाद् भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेन वर्धन्ते । अद्यतेऽत्ति च भूतानि। तस्मादन्नं तदुच्यत इति। तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योऽन्यन्तर आत्मा प्राणमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविध-तामन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्राण एव शिरः। व्यानो दक्षिणः पक्षः। अपान उत्तरः पक्षः। आकाश आत्मा। पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इस पृथ्वी पर जितनी भी चिदचिदात्मक प्रजायें हैं, वे अन्न से ही उत्पन्न होती हैं, वे अन्न से ही जीती हैं। अनततोगत्वा अन्न में ही प्रवेश कर लेती हैं। अन्न सम्पूर्ण भोगों में ज्येष्ठ है। इसलिए इसको सर्व औषधि कहते हैं। जो लोग अन्न की ब्रह्मबुद्धि से उपासना करते हैं, वे सभी भक्ष्य पदार्थों को प्राप्त कर लेते हैं। अन्न से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न से ही बढ़ते हैं, जो सबको खाता है और सबके द्वारा खाया जाता है वही अन्न कहा जाता है। यहाँ कर्त्ता और कर्म दोनों में 'क्त' प्रत्यय हुआ है। इस अन्नमयपुरुष से यह प्राण रूप आत्मा विलक्षण है। उसी से यह पुरुष पूर्ण है। वह पुरुष के आकार का हैं इसलिए वह पुरुष एक पक्षी की दृष्टि से देखा गया है। प्राण ही उस पक्षी का सिर है। व्यान दाहिना पंख है, अपान बांया पंख है; आकश उसका मध्यभाग है, पृथ्वी उसका पुच्छ भाग है। जिस पर वह टिका हुआ है। इस सम्बन्ध में यह श्लोक प्रसिद्ध है।। श्री ।।

।। इति ब्रह्मानन्दवल्ली का द्वितीय अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ तृतीय-अनुवाक ।।

संगति– अब तृतीय अनुवाक में मनोमय पुरुष का वर्णन किया जाता है ।। श्री ।।

प्राणं देवा अनु प्राणन्ति। मनुष्याः पशवश्च ये। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात् सर्वायुषमुच्यते। सर्वमेव त आयुर्यन्ति ये प्राणं ब्रह्मोपासते। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति। तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्मात्प्राण-मयादन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः। तस्य यजुरेव शिरः ऋग्दक्षिणः पक्षः। सामोत्तरः पक्षः। आदेश आत्मा। अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रातिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इसी प्राण के बल पर सभी देवता और सभी मनुष्य जीते हैं। प्राण ही सम्पूर्ण प्राणियों का आयु है। इसलिए इसे सर्वायुष कहते हैं। वे सम्पूर्ण आयु प्राप्त करते हैं जो प्राण को ब्रह्म मान कर उपासना करते हैं। उस प्राण का भी आकाश ही आत्मा है जो पहले का था। उस प्राण से भी सूक्ष्म और विलक्षण हैं मनोमय आत्मा। वह पुरुष के आकार का है। इसलिए उस मनोमय पक्षी का यजुर्वेद सिर है, ऋग्वेद दाहिना पंख है और सामवेद बांया पंख। श्रुति का आदेश वाक्य ही इसका शरीर है। इस पर भी श्लोक प्रसिद्ध है ।। श्री ।।

।। इति ब्रह्मानन्दवल्ली का तृतीय अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ चतुर्थ-अनुवाक ।।

संगति– अब चतुर्थ अनुवाक में मनोमय पुरुष की व्याख्या की जाती है ।। श्री ।।

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति। तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य।

तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयादन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयस्तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधातामन्वयं पुरुषविधः। तस्य श्रद्धैव शिरः। ऋतं दक्षिणः पक्षः। सत्यमुत्तरं पक्षः। योग आत्मा। महः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जिस प्रभु को न प्राप्त करके मन के सहित सभी वाणियाँ लौट आती हैं ऐसे परब्रह्म परमात्मा के सारभूत आनन्द को जानता हुआ विद्वान् कभी-भी नहीं डरता। इस मनोमय का भी शरीर प्राण शरीर की भाँति ही है। इससे भी विलक्षण है विज्ञानमय आत्मा। वह भी एक पक्षी के समान है। श्रद्धा ही इसका सिर है। ऋत अर्थात् यथाश्रुतभाषण दाहिना पंख, और सत्य यानि यथार्थभाषण बायां पंख और योग ही उसकी (इस विज्ञानमय पक्षी की) आत्मा है। इस पर भी यह श्लोक प्रसिद्ध है॥ श्री॥

।। इति ब्रह्मानन्दवल्ली का चतुर्थ अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ पञ्चम-अनुवाक ।।

संगति– अब पंचम अनुवाक में आनन्दमय पुरुष का वर्णन करते हैं। यहाँ यह ध्यान रहे कि— इस वल्ली के प्रथम अनुवाक में अन्नमय पुरुष का, द्वितीय में प्राणमय पुरुष का, तृतीय में मनोमय पुरुष का, चतुर्थ में विज्ञानमय पुरुष का तथा पंचम में आनन्दमय पुरुष का वर्णन किया गया है। इन्हीं को अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय और आनन्दमय कोष भी कहते हैं॥ श्री॥

विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्माणि तनुतेऽपि च। विज्ञानं देवाः सर्वे। ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद। तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति। शरीरे पाप्मनो हित्वा। सर्वान्कामान्समश्नुत इति। तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः।

तस्य प्रियमेव शिरः । मोदो दक्षिणः पक्षः । प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– यहाँ विज्ञान बुद्धि का वाचक है। विज्ञान, यज्ञों का सम्पादन करता है और सभी कर्मों का अनुष्ठान करता है। अर्थात् बुद्धिमान मनुष्य के द्वारा ही यज्ञ तथा कर्मों का सम्पादन किया जाता है इसलिए ब्रह्म अर्थात् वेद ही श्रेष्ठ है जिससे, ऐसे विज्ञान अर्थात् आध्यात्मिक बुद्धि की देवता ब्रह्मबुद्धि से उपासना करते हैं। इसका भी पहले जैसा ही शरीर का आकार होता है। इस विज्ञानमय पुरुष से विलक्षण आनन्दमय आत्मा होता है। यह भी पुरुष के आकार का होता है। अतः यह भी एक पक्षी है। प्रिय इसका सिर है, मोद (प्रसन्नता) इसका दाहिना पंखा है, प्रमोद अर्थात् मनचाही वस्तु के लाभ से उत्पन्न प्रसन्नता इसका बांया पंखा है। आनन्द ही इसका शरीर है और ब्रह्म परमात्मा ही इसकी पूँछ है जिस पर यह टिका हुआ है। इस पर यह श्लोक प्रसिद्ध है।। श्री ।।

यहाँ यह ध्यान रहे कि एक ही प्रत्यगात्मा के पाँच वेष हैं। दिन में रहता हुआ भी यह अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता। पुरुषार्थवादी होने से पुरुष कहा गया है और श्रुति ने जीवात्मा की पुरुष जैसी आकृति भी कही है। अतः पाँचों अनुवाकों में इसे पुरुष विधि शब्द से विशेषित किया गया है। वैदिक धर्म से विरुद्ध कुछ सन्तमत में आत्मा को नारी स्वरूप माना गया है। कदाचित् उसी से प्रभावित होकर संत कबीर ने भी आत्मजीव को नारी कहा— 'हरि मोर पिउ मैं राम की बहुरिया'। सूफी संतों ने आत्मा को प्रेमी और परमात्मा को प्रेमिका (महबूबा) कह कर एक नया ही बखेड़ा खड़ा किया। शंकराचार्य ने आत्मा को ब्रह्मरूप मान कर उसे निष्क्रिय, निधर्म, निर्विशेष आदि कह कर इस विचारे आत्मा को या तो शून्य या तो नपुंसक मान लिया। इसी के परिणाम स्वरूप सारा भारत देश पुरुषार्थहीन और नपुंसक होकर रह गया। दो हजार वर्षों तक विदेशी आक्रमणों से पिसता रहा। यदि ठीक से उपनिषदों का अध्ययन किया गया होता तो यह दुर्दशा न होती। क्योंकि उपनिषदों तथा गीता में जीवात्मा को एक पुरुषार्थवादी, पूर्णपुरुष, अमृत का पुत्र परमात्मा परमात्मा का सनातन अंश तथा परमपराक्रमी महाराज के रूप में माना है। इसीलिए गीता में भगवान्

कृष्ण अर्जुन से कहते हैं— 'क्लैव्यं मास्मगमः पार्थ' (गीता- २/३) अर्थात् हे पार्थ! तुम नपुंसक न बनो। रामचरित मानस में श्री लक्ष्मण जी भी यही कहते हैं—

कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव-दैव आलसी पुकारा।।

अतः अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय, मनोमय ये चार रूप आत्मा के बहिरंग हैं परन्तु आनन्द आत्मा का अन्तरंग रूप है। जैसे कोई भद्र व्यक्ति पाँच कुर्ते पहने हो ठीक उसी प्रकार यह जीवात्मा भी इन पाँच कोषों को कौषेय रूप में पहने रहता है। भगवद् भक्ति की महिमा से इन पाँच रूप कौषेयों को समाप्त करके, भगवत् कृपा प्रेम पट को धारण कर, यह दास्य नामक अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए भागवत में कपिलदेव देवहूति से कहते हैं— अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेः गरीयसी, जरयत्याशु वयकोषान् निदीर्णमनलो यथा।। अर्थात् निःस्वार्थ भगवान् की भक्ति मोक्ष से भी श्रेष्ठ है। जिस प्रकार जठराग्नि भोजन को पचा देती है उसी प्रकार भगवद् भक्ति अन्नमयादि सभी कोषों को जला देती है।। श्री।।

।। इति ब्रह्मानन्दवल्ली का पञ्चम अनुवाक सम्पन्न हुआ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु।।

●

।। अथ षष्ठ-अनुवाक ।।

संगति– अब ब्रह्म के विज्ञान और अज्ञान का फल कह रहे हैं।। श्री।।

असन्नेव स भवति। असद्ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति। तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य। अथातोऽनुप्रश्नाः। उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चन गच्छती ३। आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चित्समश्नुता ३ उ। सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इद ँ सर्वमसृजत यदिदं किञ्च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च।

सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्। यदिदं किंच। सत्सत्यमित्याचक्षते। तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जो 'ब्रह्म नहीं है' ऐसा जानता है, वह स्वयं असन अर्थात् दुष्ट हो जाता है। जो 'ब्रह्म है' ऐसा जान कर उपासना करता है, उसे संत मान कर सभी उसकी उपासना करते हैं। उस आनन्दमय आत्मा का पूर्ववत् शरीर होता है। अब यहाँ तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं। क्या ब्रह्म नहीं है? यदि है तो वह व्यापक है या व्याप्त? यदि व्यापक है, तो उसे जान कर विद्वान् इस लोक से कहाँ जाता है? और न जानने वाला क्या इसी लोक में रहता है? इसी का यहाँ अनुवाद कर रहे हैं। क्या ब्रह्म को न जानने वाला कोई इस लोक से परलोक जाता है? अथवा क्या ब्रह्म जान कर व्यक्ति इसी लोक में कामनाओं को भोगता है? इन प्रश्नों का बहुत विलक्षणता से उत्तर दे रहे हैं।। श्री ।।

एक बार परमात्मा ने कामना की, 'मैं अन्तर्यामी रूप में बहुत हो जाऊँ। और कार्य ब्रह्म रूप में प्रकृष्ट रूप से जन्म लूँ। अर्थात् जीवों के भोग्य शरीरों का निर्माण कर प्रकृष्ट रूप से जन्म लूँ। जिससे प्रत्येक शरीर में जीवात्मा के साथ रह सकूँ।' परमात्मा ने तप किया अर्थात् दिव्य ज्ञान से पूर्वकल्प की सृष्टि का चिन्तन किया। तप करके चिदचिदात्मक इस समस्त संसार की रचना की। इस जगत् की रचना करके इसी की अनुकूलता से इसी में प्रवेश किया। इस जगत् में प्रवेश करके प्रभु सत्, पृथ्वी, जल, तेज, एवं सच्च वायु, आकाश रूप में परिणत हो गये। उसी प्रकार चिदंश से निरुक्त अर्थात् स्थूल और अचिदंश से अनिरुक्त अर्थात् नाम रूप से रहित, चिदंश से निलयन प्रवेश करने योग्य, अचिदंश से अनिलयन अर्थात् अखण्ड न प्रवेश करने योग्य, सत्य और अमृत इस प्रकार सब में प्रवेश करके वह सत्य स्वरूप परमात्मा सब कुछ हो गये। इस पर एक श्लोक भी प्रसिद्ध है।। श्री ।।

।। इति ब्रह्मानन्दवल्ली का षष्ठ अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ सप्तम-अनुवाक ।।

संगति– अब फिर सृष्टि कर्म का अभ्यास कर रहे हैं।। श्री ।।

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। तदात्मान ँ् स्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति। यद्वैतत्सुकृतं रसो वै सः। रस ँ् ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात्कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते। अथ सोऽभयं गतो भवति। यदा ह्येवैष एतास्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति। तत्त्वेव भयं विदुषोऽमन्वानस्य। तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– सृष्टि के पहले यह जीव 'असत्' अर्थात् अव्याकृत नाम रूप वाला और अकाररूप वासुदेव में 'सत्' यानी विराजमान था। सृष्टि के समय उन्हीं परमात्मा से सद्रूप जीव, जगत् उत्पन्न हुआ। इसके अनन्तर परमात्मा ने अपने को ही नाना रूप में बनाया। अर्थात् अपने अचित् शरीर में ही जगत् का परिणाम प्रस्तुत किया। इसलिए यह रचना बहुत सुन्दर हुई। लोग इसे सुकृति कहते हैं। वह परमात्मा रसस्वरूप है। अर्थात् वह जगत् का आनन्द है, जगत् का बल है और जगत् का सारसर्वस्व है। इसी रस परमात्मा को प्राप्त करके यह जीव आनन्द युक्त हो जाता है। यदि आकाश के समान व्यापक यह आनन्द रूप परमात्मा न होते तो यह जीव कैसे स्वास लेता और कैसे सुख से जी सकता। यही परमात्मा सबको आनन्दित करते हैं। जब यह जीवात्मा सामान्य नेत्रों से न देखे जाने योग्य तथा सामान्य वाणी से न कहने योग्य एवं सामान्य लोगों द्वारा न प्रवेश करने योग्य इस परमात्मा में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है, तब वह अभ्यपद को प्राप्त हो जाता है। जो इस ब्रह्म में थोड़ा-सा भी अन्तर मान कर पेट में छुपायी हुई वस्तु की भाँति कुछ छिपाता है और अपने को भगवान् से अलग मान लेता है, उसके जीवन में बहुत भय आ जाता है। उस परमात्मा से भय मानने वाले के प्रति यह श्लोक प्रसिद्ध है।। श्री ।।

व्याख्या– इस मन्त्र में 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रविशत्' वाक्यखण्ड से ब्रह्म को जागत् का रचियता कहा गया है और 'तदात्मानं स्वमकुरुत' अर्थात् प्रभु ने स्वयं अपने को बनाया इस मंत्र खण्ड से श्रुति ने जगत्

को परमेश्वर का परिणाम सिद्ध किया। अर्थात् प्रभु ने अपनी प्रकृतिरूप शरीर को ही जगत् के रूप में बदला इससे अद्वैतवादियों का विवर्तवाद अपने आप समाप्त हो गया ।। श्री ।।

।। इति ब्रह्मानन्दवल्ली का सप्तम अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

•

।। अथ अष्टम-अनुवाक ।।

संगति– अब परमात्मा के अज्ञान में भय और परमात्मा के ज्ञान में अभय का वर्णन करते हैं ।। श्री ।।

भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति। सैषाऽऽनन्दस्यमीमा ँसा भवति। युवा स्यात्सा-धुयुवाध्यापक आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठस्तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुष आनन्दः। ते ये शतं मानुषा आनन्दाः ।।१।।

स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः। स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रि-यस्य चाकामहतस्य च ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः। स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ये ते शतं पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दाः। स एक आजानजानां देवानामानन्दः ।।२।।

श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः। स एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः। ये कर्मणा देवानपियन्ति। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः। स एको देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एक इन्द्रस्यानन्दः ।।३।।

श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः। स एको बृहस्पतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः।

स एकः प्रजापतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं प्रजापतेरानन्दः। स एको ब्राह्मण आनन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।।४।।

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः स य एवं विदस्माल्लोकात्प्रे-त्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामिति। तदप्येष श्लोको भवति ।।५।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– भगवान् के भय से वायु बहता है। भगवान् के भय से सूर्य नारायण उदित होते हैं। भगवान् के भय से अग्नि प्रज्जवलित होते हैं। भगवान् के भय से इन्द्र वर्षा करते हैं और भगवान् के भय से इनमें से पाँचवाँ मृत्यु दौड़ता रहता है। वह इस प्रकार आनन्द की मीमांसा है, अर्थात् सर्वत्र आनन्द सापेक्ष और परमात्मा का आनन्द निरपेक्ष है। जो परमेश्वर को जान लेता है वह युवक, साधु, अध्यापक, स्वस्थ्य और बलिष्ठ बन जाता है। सारी पृथ्वी उसके वश में आ जाती है। यह एक मनुष्य का आनन्द है। ऐसे सौ मनुष्यों के आनन्दों के बराबर एक मनुष्य गन्धर्व का आनन्द होता है। वह निष्काम ब्रह्मज्ञ को प्राप्त होता है। ऐसे वे सौ मनुष्य गन्धर्वों का आनन्द जितना सुख देते हैं उतना एक देव गन्धर्व का आनन्द सुखद होता है, वह भी ब्रह्मवेत्ता को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार सैकड़ों देव-गंधर्वों के आनन्द के समान चिरलोक लोक निवासी पितरों का एक आनन्द होता है। वह भी ब्रह्मज्ञ को सुलभ हो जाता है। ऐसे पितरों के सैकड़ों आनन्द अजानज देवताओं के एक आनन्द के समान होते हैं। वह आनन्द भी ब्रह्मवेत्ता को प्राप्त हो जाता है। ऐसे आजानज देवताओं के सौ आनन्द ही कर्म देवताओं का एक आनन्द होता है। वह भी निष्काम श्रोत्रिय को प्राप्त हो जाता है। कर्म देवों के जो सौ आनन्द है वही देवताओं का एक आनन्द है। वह भी ब्रह्मज्ञ को सुलभ है। देवताओं के सौ आनन्दों के समान इन्द्र का एक आनन्द है। उसे भी ब्रह्मज्ञ प्राप्त कर लेता है। इन्द्र के सौ आनन्दों के जितना बृहस्पति का एक आनन्द होता है । वह भी निष्काम श्रोत्रिय को हस्तगत रहता है। बृहस्पति के सौ आनन्द के बराबर प्रजापति

का एक आनन्द है, वह भी कामनाओं के बराबर प्रजापति का एक श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ को उपलब्ध है। प्रजापति के जो सौ आनन्द है वही ब्रह्मा का एक आनन्द है, वह भी ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय को हस्तगत हो जाता है। वह श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ मनुष्य से लेकर ब्रह्म पर्यन्त आनन्दों का इसलिए अधिकारी होता है क्योंकि वह ब्रह्मवेत्ता है। जो पुरुष मनुष्य के दक्षिण नेत्र में हैं वही सूर्य नारायण के मण्डल में है। इस प्रकार जो जानता है वह शरीर त्यागकर इस लोक से परलोक जाता हुआ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों को भी लाँघ जाता है॥ श्री॥

॥ इति ब्रह्मानन्दवल्ली का अष्टम अनुवाक सम्पन्न हुआ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

●

॥ अथ नवम-अनुवाक॥

संगति– अब ब्रह्माजी की महिमा का वर्णन करते हैं॥ श्री॥

यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति। एत ँ ह वाव न तपति। किमह ँ साधु नाकरवम्। किमहं पापमकरवमिति। स य एवं विद्वानेते आत्मान ँ स्पृणुते। उभे ह्येवैष एते आत्मन ँ स्पृणुते। य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥१॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जिस परमात्मा को बिना प्राप्त किये ही मन के सहित वाणियाँ लौट आती हैं, उस ब्रह्म सम्बन्धी आनन्द को जानता हुआ ब्रह्मवेत्ता किसी से भी नहीं डरता। मैंने क्या अच्छा किया, क्या अच्छा नहीं किया? यह विचार उसको कष्ट नहीं देते। शुभ और अशुभ दोनों ही ब्रह्मवेत्ता को प्रसन्न करते रहते हैं। यही उपनिषद् तथा रहस्यविद्या है॥ श्री॥

॥ इति तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली पर
श्रीराघवकृपाभाष्य सम्पन्न हुआ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

●

।। अथ भृगुवल्ली ।।

शान्तिपाठ

भृगुवल्ली का भी– ॐ । सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः । शांतिपाठ है । जिसकी व्याख्या हम कर चुके हैं ।। श्री ।।

।। अथ प्रथम-अनुवाक ।।

संगति– अब भृगुवल्ली में ब्रह्म के तटस्थ लक्षण की मीमांसा की जा रही है । लक्षण दो होते हैं— स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ्य लक्षण । जहाँ किसी के स्वरूप का वर्णन करके लक्षण किया जाय उसे स्वरूपलक्षण कहते हैं । जैसे दशरथ पुत्र राम श्यामवर्ण के हैं, धनुर्बाण धारण करते हैं । वत्स पर श्रीवत्सलाञ्छन हैं । सिर पर कनककिरीट तथा गले में वैजन्ती माला एवं कटितट पर पीताम्बर है । तटस्थ्य लक्षण वह है जहाँ असाधारण धर्म से लक्षण किया जाय । जैसे 'गन्धवत्वं पृथिव्या लक्षणम् ।' ब्रह्म का स्वरूप लक्षण तैत्तिरीय उपनिषद् के ब्रह्मानन्दवल्ली के प्रथम अनुवाक् में किया गया । 'कारणत्व' ब्रह्म का तटस्थ्य लक्षण है । यह और किसी में नहीं है । क्योंकि असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं । 'असाधारणधर्मो लक्षणम् ।। श्री ।।

भृगुर्वै वारुणिः पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तस्मा एतत्प्रोवाच । अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति । त ँ होवाच । यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंवि-शन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– वरुण महर्षि के पुत्र भृगु अपने पिता वरुण के पास आये । प्रणाम करके बोले— भगवन् मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिए । वरुण ने शाखाचन्द्र न्याय से भृगु से कहा— अन्न, प्राण, नेत्र, श्रवण, मन और वाणी ये ब्रह्म हैं अर्थात् इनमें ब्रह्म बुद्धि करो । पिता के इस वाक्य से भृगु को संतोष नहीं हुआ । तब वरुण ने भृगु को निश्चयपूर्वक तटस्थ्य लक्षण बताया— हे पुत्र ! निश्चय से जिस ब्रह्म के पास से ये

प्राणी जन्म लेते हैं और जन्म लेकर जिसकी कृपा से जीते हैं तथा शरीर त्याग कर जिसमें प्रविष्ट हो जाते हैं, उसी की विशिष्टाद्वैत पद्धति से जिज्ञासा करो और उसी का विशिष्टाद्वैत के विचार करो। वह (जगत् के जन्म, पालन, प्रलय का कारण) ही ब्रह्म है। यह सुनकर भृगु ने तप अर्थात् विचार किया और विचार करके फिर पिता के पास आये ।। श्री ।।

।। इति भृगुवल्ली का प्रथम अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ द्वितीय-अनुवाक ।।

संगति– अब फिर भृगु की जिज्ञासा का तारतम्य कहते हैं ।। श्री ।।

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तँ्होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब भृगु ने 'अन्न ही ब्रह्म है' ऐसा निश्चय किया, क्योंकि पिता जी ने ब्रह्म के जो लक्षण कहे वे अन्न में सब घटते हैं। अन्न से जीव जन्म लेते हैं। अन्न से जीते हैं और अन्त में अन्न में प्रवेश कर जाते हैं। इस प्रकार जान कर भृगु फिर वरुण के पास आये और बोले— भगवन्! अब मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए। वरुण ने कहा— पुत्र! तप से ब्रह्म की जिज्ञासा करो। तप ही ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। अर्थात् तपस्या करके एकान्त में मेरे कहे हुए लक्षण को घटाओ। भृगु ने फिर तप किया और तप करके क्या निर्णय किया इस पर कहते हैं ।। श्री ।।

।। इति भृगुवल्ली का द्वितीय अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ तृतीय-अनुवाक ।।

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। प्राणेन जातानि जीवन्ति। प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। त ँ् होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– तपस्या करके भृगु ने निश्चय किया कि प्राण ही ब्रह्म है। क्योंकि इसमें जगज्जन्मादिकारणत्व घट रहा है। प्राण से ही प्राणी जन्म लेता है। प्राण से ही जीते हैं अन्त में प्राण में ही प्रवेश करते हैं। ऐसा जान कर भृगु अपने पिता वरुण के पास फिर आये और बोले— भगवन्! मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए। वरुण ने फिर कहा— जाओ तपस्या करके ब्रह्म का विचार करो। तप ही ब्रह्म है। भृगु ने पुनः तप किया और तप करके कुछ निश्चय किया।। श्री ।।

।। इति भृगुवल्ली का तृतीय अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ चतुर्थ-अनुवाक ।।

संगति– फिर भृगु की जिज्ञासा कहते हैं।। श्री ।।

मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। मनसा जातानि जीवन्ति। मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। त ँ् होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– फिर भृगु ने तप करके मन में ही जगज्जन्मादिकारणत्व का संगमत्व करके 'मन ही ब्रह्म है' ऐसा निश्चय किया। क्योंकि मन से ही प्राणी जन्म लेते हैं, मन से ही जीते हैं और अन्त में मन से ही प्रवेश कर लेते हैं। यह जान कर भृगु पिता के पास आये और मन को ही ब्रह्म बताया। कहा— भगवन् और ब्रह्म का उपदेश दीजिए।

वरुण ने कहा— फिर तपस्या करके ब्रह्म की जिज्ञासा करो। तप ही ब्रह्म है। भृगु ने फिर तपस्या की। और विचार करके निश्चय किया॥ श्री॥

॥ इति भृगुवल्ली का चतुर्थ अनुवाक सम्पन्न हुआ ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

●

॥ अथ पंचम-अनुवाक ॥

संगति– फिर भृगु की जिज्ञासा का क्रम कह रहे हैं॥ श्री॥

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तँ होवाच। तपसा ब्रह्मविजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा॥१॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– भृगु ने तपस्या करके विज्ञान अर्थात् जीवात्मा में ही पिता के कहे हुए ब्रह्म लक्षणों को घटाया। क्योंकि विज्ञान अर्थात् जीवात्मा अथवा बुद्धि से ही प्राणी का जन्म होता है। विज्ञान से ही प्राणी जीते हैं, विज्ञान में ही प्रलयकाल में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार विज्ञान में जगज्जन्मादिकारणत्व को संगत करके भृगु पिता वरुण के पास फिर आये और बोले— भगवन् मैंने तो आपका ब्रह्मलक्षण विज्ञान में घटा लिया। यदि और कुछ हो तो ब्रह्म का उपदेश दीजिए। तब वरुण ने कहा— वत्स तप से ब्रह्म की जिज्ञासा करो। तप ही ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। भृगु ने फिर तप किया और तप करके अन्तिम निश्चय किया। क्योंकि सिद्धान्त वही होता है जिसके पश्चात् मन स्वयं ही निःसन्देह हो जाय और कोई जिज्ञासा न रह जाय॥ श्री॥

॥ इति भृगुवल्ली का पञ्चम अनुवाक सम्पन्न हुआ ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

●

।। अथ षष्ठ-अनुवाक ।।

संगति– अब वारुणीविद्या का उपसंहार करते हैं।। श्री ।।

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रत्यभिसंविशन्तीति। सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। य स एवं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति, प्रजया पशुभिर्ब्रह्म-वर्चसेन। महान् कीर्त्या ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– भृगु ने तपस्या करके गम्भीर विचार से 'आनन्द ही ब्रह्म है' ऐसा जान लिया और पिता के कहे हुए जगज्जन्मादि-कारणत्व को आनन्द ब्रह्म में ही पूर्णरूप से संगत कर लिया। क्योंकि आनन्द से ही ये सभी प्राणी निश्चयपूर्वक जन्म लेते हैं, आनन्द से ही जीवन धारण करते हैं, शरीर का त्याग करके प्रयाण करते हुए आनन्द में ही प्रवेश करते हैं। इस प्रकार— 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि ब्रह्मलक्षण आनन्दरूप में ठीक-ठीक संगत हो गया। फिर भृगु की जिज्ञासा शान्त हो गयी और फिर वे अपने पिता वरुण के पास नहीं गये। वह यही भार्गवी वारुणी विद्या परमव्योम परमात्मा के साकेतलोक में प्रतिष्ठित हैं। जो साधक इसे इस प्रकार जानता है वह 'अन्नवान्' अन्न देने वाला प्रजा, पशु और ब्राह्मण तेज से महान् होता है तथा कीर्ति से भी महान् हो जाता है।। श्री ।।

।। इति भृगुवल्ली का षष्ठ अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ सप्तमोऽनुवाक ।।

संगति– अब अन्न की प्रसंशा करते हैं।। श्री ।।

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम् प्राणो वा अन्नम्। शरीरमन्नादम्। प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम्। शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिए। उसे

भगवद्बुद्धि से पा लेना चाहिए। यह एक व्रत है। प्राण ही अन्न है। शरीर अन्न खाता है। प्राण शरीर में और शरीर प्राण में प्रतिष्ठित है। जो ऐसा जानता है वह प्रजा, पशु, ब्रह्मतेज और कीर्ति से महान् हो जाता है॥ श्री॥

॥ इति भृगुवल्ली का सप्तम अनुवाक सम्पन्न हुआ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

●

॥ अथ अष्टम-अनुवाक॥

संगति– अब अन्न के परिहरण का निषेध करते हैं॥ श्री॥

अन्नं न परिचक्षीत। तद् व्रतम्। आपो वा अन्नम्। ज्योतिरन्नादम्। अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम्। ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान्भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान्कीर्त्या॥१॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– आये हुए अन्न को हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। प्रायः भोजन, वस्त्र कटोरे या थाली से ढक कर लाना चाहिए। क्योंकि जल ही अन्न है और ज्योति ही अन्न भक्षक। दोनों एक दूसरे में प्रतिष्ठित हैं। जो ऐसा जानता है वह प्रजा, पशु और ब्रह्मतेज से सम्पन्न होता है॥ श्री॥

॥ इति भृगुवल्ली का अष्टम अनुवाक सम्पन्न हुआ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

●

॥ अथ नवम-अनुवाक॥

संगति– अब श्रुति अन्नोत्पादन का विधेयत्व प्रतिपादित करती है॥ श्री॥

अन्नं बहु कुर्वीत। तद्व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्। आकाशो-ऽन्नादः। पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः। आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या॥१॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अन्न का उत्पादन बहुत करना चाहिए।

क्योंकि पृथ्वी अन्न है और आकाश अन्नाद्। दोनों एक दूसरे में प्रतिष्ठित हैं। जो अन्न में अन्न को प्रतिष्ठित जानता है, वह प्रतिष्ठित होता है। और प्रजा, पशु, ब्रह्मतेज तथा कीर्ति से महान् बनता है। यहाँ श्रुति अपनी त्रिकालज्ञता का परिचय दे रही है। उन्हें बहुत पहले ज्ञात हो चुका था कि आगे चल कर भारत की जनसंख्या अरब के ऊपर जायेगी। इससे अन्न का उत्पादन बहुत अपेक्षित होगा ।। श्री ।।

।। इति भृगुवल्ली का नवम अनुवाक सम्पन्न हुआ ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। अथ दशम-अनुवाक ।।

न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत । तद्व्रतम् । तस्माद्यया कया च विधया वह्वन्नं प्राप्नुयात् । अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते । एतद्वै मुखतोऽन्न ँ् राद्धम् । मुखतोऽस्मा अन्न ँ् राध्यते । एतद् वै मध्यतोऽन्न ँ् राद्धम् । मध्यतोऽस्मा अन्न ँ् राध्यते । एतद्वा अन्ततोऽन्न ँ् राद्धम् । अन्ततोऽस्मा अन्न-ँ् राध्यते ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अपने घर में भोजन करते हुए किसी को मना नहीं करना चाहिए। जिस किसी विधि से सम्भव हो अन्न का बहुत उत्पादन करना चाहिए। क्योंकि आये हुए प्रत्येक व्यक्ति को भोजन देना यह गृहस्थ का व्रत है। अन्न को प्रसन्न करना चाहिए। ऐसा महापुरुष कहते हैं। यह मुख से सन्तुष्ट किया हुआ अन्न मुख से ही सन्तुष्ट हो सकता है। अर्थात् बहुत चपर-चपर करके भोजन नहीं करना चाहिए। अन्न देवता को मध्य भाग से प्रसन्न करना चाहिए। अर्थात् पेट में इतना नहीं डाल देना चाहिए कि जिससे अपान वायु और उदानवायु की झड़ी लग जाय और अजीर्ण हो जाय। अन्त में भी भोजन को प्रसन्न करना चाहिए अर्थात् इतना नहीं खा लेना चाहिए कि बार-बार दीर्घशंका ही जाना पड़े। इसकी आध्यात्मिक व्याख्या यह है कि— भोजन के प्रारम्भ में भगवान् का स्मरण तथा भोजन के मध्य तथा भोजन के अन्त में भगवान् का स्मरण करना चाहिए। आज भी हमारे रामानन्दीय वैष्णव साधुओं की परम्परा में प्रसाद के प्रारम्भ में श्री सीताराम का कीर्तन, प्रसाद के मध्य में श्री सीताराम का गर्जन और प्रसाद के अन्त में श्री सीताराम नाम का उच्चारण होता है ।। श्री ।।

य एवं वेद। क्षेम इति वाचि। योगक्षेम इति प्राणापानयोः। कर्मेति हस्तयोः। गतिरिति पादयोः। विमुक्तिरिति पायौ। इति मानुषीः समाज्ञाः। अथ दैवीः। तृप्तिरिति वृष्टौ। बलमिति विद्युति ॥२॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब मानुषी देवी समाज्ञाओं का वर्णन करते हैं। जो इस प्रकार अपने घर में आये हुए प्रत्येक व्यक्ति को भोजन देता है, क्षेम उसकी वाणी में रहता है अर्थात् वह अपनी वाणी से ही प्राप्त वस्तु की रक्षा कर लेता है। योग और क्षेम उसके प्राण और अपान में रहते हैं। उसके कर्म में गति होती है और उसकी पायु में संसारमल की विमुक्ति होती है। यह मानुषी समाज्ञायें हैं। उसको मेघ की वृष्टि से तृप्ति मिलती है और बिजली के चमकने से उसे बल की प्राप्ति होती है। ये दैवी चमत्कार भी उस महापुरुष में आ जाते हैं॥ श्री ॥

यश इति पशुषु ज्योतिरिति नक्षत्रेषु। प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे। सर्वमित्याकाशे। तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत। प्रतिष्ठावान् भवति। तन्मह इत्युपासीत। महान् भवति। तन्मन इत्युपासीत। मानवान् भवति ॥३॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– उसको पशुओं में यश, नक्षत्र में ज्योति एवं उपस्थ में प्रजा आनन्द और ब्रह्मचर्य रूप अमृत आकाश में, सब कुछ प्राप्त हो जाता है। प्रतिष्ठा के पूजा करने से प्रतिष्ठा और सम्मान करने से मान मिलता है॥ श्री ॥

तन्नम इत्युपासीत। नम्यन्तेऽस्मै कामाः। तद्ब्रह्मेत्युपासीत। ब्रह्मवान् भवति। तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत। पर्येण म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः। परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः। स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः ॥४॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– नमस्कार शक्ति की उपासना करनी चाहिए जिससे साधक को सभी कामनायें नमन करने लगती हैं। ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए जिससे साधक ब्रह्मवान् अर्थात् भगवत् कृपापात्र बन जाता है। ब्रह्म के परिमर अर्थात् संहारशक्ति की उपासना करनी चाहिए जिससे शत्रु बने हुए भ्रातृव्य और काम क्रोधादि शीघ्र मर जाते हैं॥ श्री ॥

संगति– अब श्रुति फलश्रुति का वर्णन करती हैं॥ श्री ॥

स य एवंवित्। अस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतमानन्दमयमात्मानमुप-

संक्रम्य । इमाँल्लोकान्कामान्नीकामरूप्यनुसंचरन् । एतत्सामगायन्नास्ते । हा ३ वु हा ३ वु हा ३ वु ।।५।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जो इस प्रकार जानता है वह अन्नमय, प्राण-मय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय इन पाँच कोषों का अतिक्रमण करके यथेच्छ भागवत् लोकों में संचरण करता हुआ सामश्रुतियों का गायन करता है ।। श्री ।।

संगति– अब भोक्ता और भोग्य की एकात्मता का वर्णन करते हैं ।। श्री ।।

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादो३ऽहममन्नादो३ऽहमन्नादः । अह ँ् श्लोककृदह ँ् श्लोककृदह ँ् श्लोककृत् । अहमस्मि प्रथमजा ऋता३स्य । पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना३भायि । यो मा ददाति स इदेव मा३वाः । अहमन्नमन्नमदन्तमा३द्मि । अहं विश्वं भुवनमभ्यभवा३म् । सुवर्न ज्योतीः य एवं वेद इत्युपनिषत् ।।६।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– "मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ। अर्थात् शरीर की दृष्टि से मैं काल का भोग्य हूँ। मैं अन्न खाने वाला हूँ, मैं अन्न खाने वाला हूँ, मैं अन्न खाने वाला हूँ। मैं श्लोक का रचयिता, मैं श्लोक का रचयिता हूँ, मैं श्लोक का रचयिता हूँ। मैं देवताओं में सबसे पहले उत्पन्न हुआ मैं अमृत का जन्मदाता हूँ। जो मुझे देता है वह सब कुछ दे देता है। मैं अन्न हूँ। मैंने अन्न खाते हुए को खाया। मैं विश्व हूँ मैंने संसार को अभिभूत किया है" इस प्रकार जो जानता है अर्थात् अपने विशुद्धभाव का चिन्तन करता है वह सुवर्ण के समान ज्योति को प्राप्त कर लेता है। अथवा शोभनवर्ण परमात्मा श्रीराम से ज्ञानज्योति प्राप्त करता है, यही उपनिषद् है ।। श्री ।।

इस भाँति उपनिषद् तैत्तिरीय पर
राघव कृपा भाष्य करके,
श्री हरि वैष्णव संत जनों की
चरण रेणु सिर पर धर के ।।
मैं रामभद्र आचार्य आज
बन रहा कृतज्ञ सुधी धन का
यह ग्रन्थ बने पाथेय भूत
परमार्थ पथिक वैष्णव जन का ।।

।। इति श्रीतैत्तरीयोपनिषद् पर श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्य स्वामीरामभद्राचार्य प्रणीत श्रीराघवकृपाभाष्य सम्पन्न हुआ ।।

।। **श्रीराघवोः शन्तनोतु** ।।

●

।। श्रीः ।।

ध्रुवमिदं, विश्वस्य विश्वेऽपि विचरकाश्चामनन्ति यज्जीवेनात्यन्तिकं सुखं नोपलब्धुं शक्यते केवलैः सांसारिकैर्भोगैः। तत्कृते तु तैः जगन्नियन्तुः परमात्मनः शरणमेवाङ्गीकरणीयम्। अनादिकालादेव सर्गेऽस्मिन् ब्रह्मजिज्ञासासमाधानपराः विचाराः प्रचलन्ति। विषयेऽस्मिन् सर्वे दार्शनिकाः सहमता यद्वेदैरेवास्य गूढरहस्यात्मकस्य परब्रह्मणः प्रतिपादनं सम्भवम्।

परब्रह्मणो निश्वासभूता अनन्तज्ञानराशिस्वरूपाः वेदाः ज्ञानकर्मोपासनाख्येषुत्रिषु काण्डेषु विस्कृताः सन्ति। एषां ज्ञानकाण्डाख्य उपनिषद्भागे वेदान्तापरनामधेया ब्रह्मविद्या वैशद्येन विर्वोचता व्याख्याता चास्ति। आसामुपनिषदां सम्यग्ज्ञानेनैव ब्रह्मज्ञानं तेन च भवदुःखनिवृत्तिरित्युपनिषदां सर्वातिशायिमहत्वं राद्धान्तयन्ति मनीषिणः। आसु प्रश्नोत्तरात्मकातिरमणीयसुमम्यसरलशैल्या जीवात्मपरमात्मनोर्जगतश्च विस्तृतं व्याख्यानं कृतमस्ति। अनेकैर्महर्षिभिरनेकैः प्रकारैरुद्भावितानां ब्रह्मविषयकप्रश्नानां समाधानानि ब्रह्मवेतृणां याज्ञवल्क्यादिमहर्षीणां मुखेभ्य उपस्थापयन्त्युपनिषदः। भगवता वेदव्यासेन ब्रह्मसूत्रेषु भगवता श्रीकृष्णेन च श्रीगीतायामासामेव सारतत्वं प्रतिपादितम्।

भारतीयदर्शनानामाधारभूता इमे त्रयो ग्रन्थाः विभिन्नसम्प्रदायप्रवर्तकैराचरयैर्व्यख्याताः। एष्वद्वैतवादिन आद्यशङ्कराचार्याः प्रमुखा, अन्ये च द्वैतशुद्धाद्वैतद्वैताद्वैतशिवाद्वैतदिवादिनो विद्वांसः स्वस्वमतानुसारमुपनिषदः व्याख्यापयांबभूवुः।

अथ साम्प्रतिकभारतीयदार्शनिकमूर्धन्यैर्वेदवेदाङ्गपारङ्गतैर्धर्मध्वजधारिधौरेयैः श्रीरामानन्दाचार्यैः श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यमहाराजैर्विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तमनुसृत्य कृतामिदमुपनिषदां **''श्रीराघवकृपाभाष्यम्''** सर्वत्रैवाभिनवविचारैर्व्युत्पत्तिभिश्चालङ्कृतं विभाति। भाष्येऽस्मिन्नाचार्यचरणैः शब्दव्युत्पत्तिचातुरीचमत्कारेण सर्वोपनिषदां प्रतिपाद्यः भगवान् श्रीराम एवेति सिद्धान्तितम्। मध्ये मध्ये गोस्वामिश्रीतुलसीदासग्रन्थेभ्यः ससंस्कृतरूपान्तरमुदाहता अंशविशेषासुवर्णे सुरभिमातन्वन्ति। श्रीराघवपदपद्ममधुकराः भक्ता अत्रामन्दानन्दमाप्नुयुरिति भगवन्तं श्रीराघवं निवेदयति।

डॉ. शिवरामशर्मा
वाराणसी